सहज मार्ग
की
तीन लघु पुस्तकें

सीतापुर केन्द्र की भेंट

1 - सहज-मार्ग
ईश्वर प्राप्ति का अचूक सरल साधन

2 - सहज मार्ग की रूपरेखा

3 - सहज मार्ग में अभ्यासी की भूमिका

"सहज-मार्ग"

ईश्वर प्राप्ति
का
अचूक सरल साधन

लक्ष्मीशंकर

प्रकाशकीय टिप्पणी

प्रस्तुत छोटी सी पुस्तिका में मनुष्य की वास्तविक या सच्ची आकांक्षा की पूर्ति के लिए एक सरल एवं स्वभाविक मार्ग, सहज-मार्ग, पर प्रकाश डाला गया है। हमें आशा है कि इसके द्वारा पाठकों को 'सहज-मार्ग' के सैद्धान्तिक एवं प्रायोगिक पक्षों की संक्षिप्त जानकारी हो जायेगी।

"सहज-मार्ग-ईश्वर प्राप्ति का अचूक सरल साधन" के लेखक श्री लक्ष्मीशंकर, भूतपूर्व प्रिन्सिपल, के० पी० यूनिवर्सिटी कालेज, इलाहाबाद, हमारे मिशन के साधक एवं प्रशिक्षक (प्रिसेप्टर) हैं।

इस पुस्तिका में सहज-मार्ग के दस नियम तथा अभ्यास-विधि भी शामिल कर दी गई है।

अधीक्षक
प्रकाशन विभाग,
श्री रामचन्द्र मिशन
शाहजहांपुर, उ०प्र०

वसन्त पंचमी
६-२-१६८१

पंचम संस्करण-१६८५ : २००० प्रतियाँ
मूल्य : एक रुपया पचास पैसे

"सहज-मार्ग"

ईश्वर प्राप्ति का अचूक सरल साधन

विश्व के प्राणी प्राय: आपत्तियों एवं दुखों से पीड़ित हैं। इनसे छुटकारा पाना मनुष्य की एक स्वाभाविक एवं सच्ची अभिलाषा है। इन सब दु:खों का वास्तविक कारण क्या है ? अपने विभिन्न संस्कारों के भोग के लिये ही संसार में हमारा बार-बार जन्म होता है। अत: हमें केवल वर्तमान जीवन की समस्याओं को ही सुलझाना नहीं है वरन् इस जीवनोपरान्त अपने सभी आगामी जीवनों की समस्याओं का भी हल निकालना है। समस्या केवल दु:खों एवं आपत्तियों से ही छुटकारा पाना नहीं प्रत्युत उन समस्त बन्धनों से मुक्ति पाना है जो सभी दु:खों एवं आपत्तियों के मूल कारण है। इसलिये यदि हम येन-केन-प्रकारेण पुनरागमन के अन्नत क्रम को निश्चित रूप से समाप्त कर सकें तो स्वाभाविकतया उन सभी दु:खों से अवश्य ही मुक्ति मिल जायेगी। वस्तुत: हमारा भौतिक अस्तित्व तो आत्मा के चारों ओर से आसंख्य स्थूल आवरणों से घिरे होने के परिणाम स्वरूप है। वह आत्मा जो प्रारम्भ में सूक्ष्म तथा विश्व-आत्मन् (Universal Soul) का ही एक अंश था।

इस प्रकार आत्मा चारों ओर से आवरणों से आवर्तित, एक प्रकार से अन्दर ही दफनायी सी रहती है। पर दफनायी रहने पर भी वह मरती नहीं। वह तो वास्तव में सोई सी, पर क्रियाशील है। लगभग सभी हृदयों में अनजाने ही किसी सर्वत्र विराजमान सूक्ष्मतम शक्ति की मूक पहचान विद्यमान रहती है भले ही आरम्भ में उसका बोध किसी को हो अथवा न हो। इस प्रकार की (सोई हुई) भावना के प्रभाव से आत्मा निरन्तर उस सूक्ष्मतम महान शक्ति से मिलने के लिए व्यग्र रहती है। प्रश्न उठता है कि वह महान शक्ति

क्या है ? शनैः शनैः ईश्वर ही वह उच्चतम शक्ति है" यह विचार मन में घर करने लगता है । उस शक्ति की प्राप्ति कैसे संभव हो ?

वास्तव में हमारी व्यक्तिगत आत्मा की स्वाभाविक अभिलाषा बन्धनों से मुक्ति पाने की है । वह बेचैन है उस उच्चतम शक्ति. विश्व आत्मन् से मिलने के लिये जिसका कि वह एक अंश है । यह तभी संभव है जब हम अपने स्थूल जीवन की प्राथमिक प्रारम्भिक अवस्था में, पुनः पहुँच सकें—वह अवस्था जो सर्वथा सूक्ष्मतम, शुद्ध, एवं सरल है वह सूक्ष्मातिसूक्ष्म अवस्था जहाँ से उतर कर तथा विविध आवरणों से आवृत होकर हमने यह स्थूल जीवन धारण किया है। यह तभी सम्भव है जब हम अपने सभी स्थूल आवरणों को उतार फेंक सकें । इसका स्पष्ट अर्थ हुआ कि हमें स्थूलता से सूक्ष्मता की चरम सीमा तक पहुँचना है अतः हमारे जीवन का लक्ष्य हुआ अपने मूल उद्गम स्थान को लौट जाना जहाँ हमें अन्ततोगत्वा जाना ही है । वहाँ पहुँचने पर फिर संसार में आना सदा के लिये रुक जाता है । कष्टों एवं बन्धनों से मुक्ति मिल जाती है । ईश्वर प्राप्ति अथवा आत्म ज्ञान का यही सही अर्थ है । यही जीवन का परम लक्ष्य है । इस लक्ष्य की प्राप्ति सदा से मानव की स्वाभाविक अभिलाषा रही है ।

वस्तुतः ईश्वर प्राप्ति का मार्ग संसार ही प्रशस्त करता है क्यों कि हमारा भौतिक अस्तित्व संसार में ही होता है । यदि हम अपनी स्थूलताओं को त्याग कर शुद्धतम एवं सूक्ष्मतम तथा अत्यन्त हल्केपन की ओर अग्रसर हो जायं तो सहज ही लक्ष्य की प्राप्ति हो सकती है । वास्तव में आत्मज्ञान अत्यन्त सरल एवं सूक्ष्म है । इसकी अत्यधिक सरलता ही मानों इस पर आवरण डाले हुये है । किसी सरल वस्तु की प्राप्ति सरल एवं प्राकृतिक साधनों द्वारा ही संभव होती है । सरलतम की अनुभूति के लिये सरलतम साधन ही सफल हो सकता है । भूमि पर गिरी हुई सुई का उंगलियों द्वारा सहज ही उठाया जा सकता है पर यदि उसे उठाने के लिये भारी यन्त्र अर्थात् क्रेन का उपयोग करें तो उसका उठाना सम्भव न होगा । ईश्वर प्राप्ति के सम्बन्ध में भी ठीक यही बात लागू होती है । इसलिये कठिन एवं जटिल उपायों, हठ योग, मन एवं इन्द्रियों का हठात् नियन्त्रण, व्रत, उपवास, तपस्या आदि द्वारा काम नहीं

चलता। भाग्यवश ईश्वर प्राप्ति के लिये श्री रामचन्द्र मिशन शाहजहाँपुर, उत्तर प्रदेश, के संस्थापक अध्यक्ष एवं सरलता के साक्षात् अवतार परम श्रद्धेय बाबूजी महाराज ने स्नेहवश एक ऐसा प्राकृतिक एवं सरल मार्ग प्रशस्त किया है जो "सहज मार्ग" के नाम से विख्यात है "सहज मार्ग वास्तव में प्राचीन राजयोग का सार स्वरूप है। यह बाबूजीके क्रियात्मक आध्यात्मिक अनुभवों पर सर्वथा आधारित है। यह मनुष्य की अन्तरात्मा को परिष्कृत एवं परिवर्तित कर उसकी वास्तविक स्थिति तक पहुँचा देता है। इसे ही आत्म साक्षात्कार अथवा भगवत् प्राप्ति कहते हैं। वास्तव में यह ईश्वर साक्षात्कार का अत्यन्त सुगम एवं अचूक मार्ग है।

इस मार्ग में प्रशिक्षण "कारण शरीर' से प्रारम्भ होता है जहाँ संस्कार बीजरूप में रहते हैं। साधना के समय अभ्यासी के विचारों को बलात् दबाया नहीं जाता प्रत्युत नाड़ी के प्रत्येक केन्द्रों तथा स्वयं (मानस) चित्त की सफाई करने का प्रयत्न किया जाता है। चित्त विचारों का सागर है। अतः चित्त की तलहटी को ही, जहाँ से विचार की लहरे उठती हैं नितान्त स्वच्छ कर देने का प्रयत्न किया जाता है। यदि वहां से उठी हुई विचार तरंगों को हठात् अथवा बलात् दबा दिया जाय तो भी वह वस्तु जो उन तरंगो को जन्म देती है तलहटी में ज्यों की त्यों बनी रहती है तथा नवीन विचार लहरों को पुनः जन्म देकर उपर उठाती रहती है। अतः उस वस्तु को सहजरूप से तलहटी से समूल निकाल देने का प्रयत्न किया जाता है। इस प्रकार की सफाई का वांछित परिणाम होता है। अभ्यासी दिन प्रति दिन सूक्ष्मतम में लय होने के लिए हलका एवं सूक्ष्म होता जाता है।

प्रशिक्षक के साथ ध्यान सम्बन्धी तीन बैठकें (Sittings) लेकर साधना का श्रीगणेश होता है। इस मार्ग में साधक के मानस पटल से स्थूलताओं एवं जटिलताओं को बहिष्कृत करने का अधिकतर उत्तरादायित्व प्रशिक्षक अथवा गुरू पर रहता है।

इस प्रकार इस साधना पद्धति में दो तत्व है (१) अभ्यास अर्थात साधक का स्वयं-प्रयत्न (२) प्रशिक्षक अथवा गुरू की सहायता।

यह सहायता तो वास्तव में प्राणाहुति द्वारा ईश्वरीय अनुकम्पा की सहायता है। स्पष्टतः, साधक का अभ्यास ही केवल यथेष्ट नहीं है, ईश्वरीय अनुकम्पा का आलम्बन परमावश्यक है। यह अनुकम्पा केवल गुरू के ही माध्यम से अभ्यासी की ओर प्रेषित की जा सकती है। अतः गुरू ऐसा होना चाहिये जिसके पास ईश्वरीय अनुकम्पा हो या वह उसी में घुल-मिल गया हो। ऐसा गुरू प्राणाहुति के द्वारा ईश्वरीय अनुकम्पा, ईश्वरी शक्ति अथवा 'शक्तिहीन शक्ति' को अभ्यासी के हृदय में सहज ही प्रविष्ट करा देता है। अर्थात् गुरू स्वयं अपनी आत्मशक्ति द्वारा अभ्यासी की सोई हुई आत्मिक शक्तियों को जागृत कर उच्चतम आध्यात्मिक उत्थान की ओर उन्मुख और क्रियाशील कर देता है। इस प्रकार उस ईश्वरीय शक्ति अथवा प्राण (ईश्वर प्राणों का प्राण है) का प्रवेश अभ्यासी को बड़ी सरलता एवं अत्यन्त प्राकृतिक ढ़ंग से परिवर्तित कर देता है। उसकी आत्मशक्ति जाग जाती है। वह सर्वत्र हल्केपन एवं शान्ति का अनुभव करने लगता है। इस सहज रीति से मानव का परिवर्तन दैवी स्वभाव अथवा ईश्वरत्व में संभव हो जाता है।

इस मार्ग में अभ्यासी को अपने हृदय में ईश्वरीय प्रकाश के अस्तित्व को स्वीकार कर उस पर ध्यान करना होता है। ईश्वरीय पक्ष का बारं बार चिन्तन ही वास्तव में ध्यान है। इस विधि से स्थूलता छूट जाती है तथा सूक्ष्म एवं हल्के होने का बोध होने लगता है। वास्तव में विश्व-आत्मन् सूक्ष्मतम है, सभी स्थूलताओं से रहित है। इसीलिये अभ्यासी को हृदय में केवल ईश्वरीय प्रकाश के अस्तित्व पर ध्यान करने को कहा जाता है। ध्यान के समय उसे उस प्रकाश के किसी रूप या रंग को देखने की चेष्टा नहीं करना है। उसे केवल यह मान लेना है कि दैवी प्रकाश वहाँ है। वस्तुतः, वास्तविक प्रकाश न तो प्रकाश ही है और न ही अन्धकार। वह तो इन दोनों से परे है। वह सूक्ष्म से भी सूक्ष्मतम है एवं पदार्थ रहित पदार्थ है। इस प्रकार के कल्पित प्रकाश पर ध्यान करने का स्पष्टतः अर्थ हुआ-सूक्ष्मातिसूक्ष्म पर ध्यान करना। अर्थात् "वास्तविकता" अथवा अति सूक्ष्म पर ध्यान करना। वास्तव में वास्तविकता कोई ऐसी वस्तु नहीं जिसे हम इन्द्रियों अथवा कर्मेन्द्रियों

द्वारा जान सकें। उस साक्षात्कार की अनुभूति तो हृदय के अन्तरतम में ही सम्भव है।

सृष्टि की रचना-प्रक्रिया पर विचार करनेपर यह वस्तु और भी स्पष्ट हो जायेगीं। निश्चय ही सृष्टि की रचना के पीछे कोई शक्ति अवश्य कार्य करती रही होगी। वह कौन सी शक्ति थी? वह तो केवल स्पन्दन, क्षोभ अथवा सृष्टि-रचना से गर्भित विचार शक्ति थी। ब्रह्मन् ने विचारा कि "मैं एक हूं, अनेक हो जाऊँ" (एकोऽहं बहुस्याम)। सृष्टि के उद्भव के पूर्व उस महाशक्ति में स्पन्दन (विचार) हुआ होगा। वही विचार मनुष्य में उतरा और उसका प्रमुख अङ्ग बन गया। मनुष्य की प्रगति के साथ साथ क्रमश: यह विचार शक्ति ग्रहण करता जाता है और विभिन्न क्षेत्रों, मन्डलों आवरणों एवं बन्धनों का निर्माण भी करता जाता है। ये सभी मिलकर उस मूल विचार को जो स्वयं ब्रह्मन्, ईश्वर, सत्य का अंश है, घेर लेते हैं, ढ़ँक लेते हैं, उसकी एक झलक मात्र लेने में रोक लगाते हैं। फिर किस प्रकार उसका दर्शन सम्भव हो? यह तभी सम्भव है जब मनुष्य अपने में निहित उस विचार शक्ति का सही उपयोग कर सके। यह तभी सम्भव है जब उसे कोई योग्य गुरू मिले जो उन बन्धनों को काटने में सक्षम हो तथा उसे मूल विचार तक पहुँचाने का मार्ग सुगम एवं सरल बना सकता हो।

अत: मानव-मन क्षोभ अथवा स्पन्दन का स्वरूप है। मन की उत्पत्ति भगवान के प्रथम विचार (स्पन्दन) से हुई है। इस प्रकार व्यक्ति का मन परमसत्ता के मन का अंश है। इसलिए यदि व्यक्ति के मन को दैवी मन के स्तर पर पहुँचा दिया जाय तो वह अपने वास्तविक स्वरूप में आ जायेगा और उचित रूप में मार्ग दर्शन करना आरम्भ कर देगा। यही मन मनुष्य का मूल शक्ति होने के कारण उसकी सभी वस्तुओं पर नियन्त्रण रखता है। उसके हर कार्य कलाप का वह केन्द्र विन्दु है। अत: उसके कार्यों, विचारों इत्यादि को शासित करता है। उसके द्वारा सही मार्ग प्रदर्शन आवश्यक है। इसलिए यदि किसी प्रकार इस मन को ईश्वरीय मन की ओर उन्मुख कर दिया जाये तो वह अपने सच्चे रूप में आ जायेगा और सही मार्ग प्रदर्शन सम्भव हो सकेगा। पर यह सब तभी सम्भव हो सकेगा जब सद्गुरू की सक्रिय सहायता प्राणाहुति द्वारा प्राप्त हो जायगी।

इस प्रकार स्पन्दन, सृष्टि का आधार है। अतएव नितान्त मूल्यवान एवं पवित्र वस्तु है यही पवित्र वस्तु मानव मन के रूप में परिलक्षित

होती है किन्तु दुर्भाग्य से यह पवित्र मन स्वयं मानव द्वारा भ्रष्ट एवं दूषित कर दिया गया है। यह दूषित मन इधर उधर भटकने वाला बन गया और मनुष्य को निरन्तर दुख देने का कारण बन गया है। अतः साधारणतः, यह सभी आपत्तियों एवं कष्टों का केन्द्र बिन्दु समझा जाता है। उसके ये दोष कैसे हटाये जायं? किस प्रकार उसके वास्तविक प्राकृतिक स्वरूप की पुनर्प्राप्ति सम्भव हो सके? एक ही उपाय है-उसे उसकी वास्तविक मूल स्थिति में पहुंचा देने का प्रयत्न करना चाहिये। जब इस प्रकार मानव मन अपने मूल स्वरूप में आ जायेगा तो उसके द्वारा निर्देशित सभी कार्य उचित एव सत्य होंगे। इसका स्पष्ट अर्थ हुआ कि यदि मानव मन उचित रूप से व्यवस्थित कर दिया जाय तो इसे उसकी वास्तविक उच्चतम स्थिति पर पहुँचाया जा सकता है जो उसका परमधाम अथवा अभीष्ट गन्तव्य है। अतः यही अभ्यासी का लक्ष्य होना चाहिए।

अभ्यासी के लिये परमावश्यक हो जाता है कि वह अपनी दृष्टि सदा उस निश्चित लक्ष्य पर केन्द्रित रखे। यदि वह ऐसा नहीं करता तो उसकी ठीक वही दशा होती है जो एक रेल के यात्री की जिसे अपने गन्तव्य स्थान का पता न हो और वह अनुमानतः लगभग प्रत्येक रेल गाड़ियों पर घबड़ाया सा चढ़ता उतरता भटकता सा रहता है। अतः गन्तव्य या लक्ष्य की विस्मृति कदापि न होने देना चाहिये। पर लक्ष्य की प्राप्ति किसी ऐसे व्यक्ति की सहायता द्वारा ही सम्भव है जिसका स्वयं का मन सर्वथा व्यवस्थित एवं दैवी शक्ति की भांति क्षोभ के रूप में हो अर्थात् ऐसा गुरू जो ईश्वर में एकता स्थापित कर उसी में निरन्तर स्थित रहता हो।

पर ऐसे गुरू की सहायता किस प्रकार प्राप्त की जाय? अभ्यासी से यह अपेक्षित है कि वह प्यार, श्रद्धा एवं भक्ति के साथ गुरू से अपना तादात्म्य स्थापित करे जिससे गुरू की शक्ति स्वतः स्वभाविक रूप से अभ्यासी के मन की क्रियाओं को व्यवस्थित करते हुए उसके हृदय में प्रवाहित होने लगे। यह तभी सम्भव है जब अभ्यासी अपने मन में तीव्र एवं वास्तविक तड़प पैदा कर सके। तड़पते हृदय की अन्तः पुकार निश्चय ही ऐसे गुरू को उसके समीप ला देगी। और जब इस प्रकार का निकटतम सम्बन्ध स्थापित हो जाता है तो गुरू अभ्यासी को अपने हृदय के अंतर्तम में ले लेता है। स्पष्टतः, इसका अर्थ हुआ पूर्ण आत्मसमर्पण जो लक्ष्य प्राप्ति का निश्चित उपाय है। फिर तो गुरू की शक्ति संपूर्ण मार्ग की यात्रा कराकर उसे लक्ष्य प्राप्ति करने में समर्थ बना देगी।

सारांशतः, ईश्वर साक्षात्कार व्यावहारिक साधना के माध्यम से ही सम्भव है। अतः हम सभी को व्यावहारिक, अत्यन्त व्यावहारिक 'सहज मार्ग' द्वारा सही अर्थों में आध्यात्मिक अनुभव प्राप्त करने का कार्य अपनाना चाहिए। यह मार्ग पारस्परिक रूढ़ियों, मन्त्र, यन्त्र, तन्त्र, यज्ञ एवं नाना प्रकार के जटिल कर्मकान्डों से सर्वथा रहित है, केवल आध्यात्मिक विकास एवं ईश्वर प्रेम ही इसका प्रमुख उद्देश्य है। यह एक ऐसा मार्ग है जो आप के साधारण जीवन में भी अति सुगमता से अपनाया जा सकता है।

अतः हमें प्रयत्नशील होकर परिश्रम के साथ अभ्यास करना चाहिये। केवल कुछ ही दिनों के अभ्यास के पश्चात यह शिकायत करना कि हम उन्नति नहीं कर रहे हैं अथवा हमें कुछ हाथ नहीं लग रहा है, सर्वथा अनुचित होगा। सद्यः परिणाम के लिए हमें उतावला नहीं होना चाहिये। वास्तव में सच्ची आरंभिक उन्नति का आभास बहुधा किसी किसी को आरम्भ में नहीं हो पाता। कारण यह है कि इस मार्ग में ईश्वरीय शक्ति सर्वप्रथम "कारण मन" पर आरोपित की जाती है। वहां से सूक्ष्म मन से प्रसारित हो वह स्थूल मन पर आती है। इस स्तर (स्थूल) पर मानव को अपनी आन्तरिक प्रवृत्तियों के सूक्ष्म परिवर्तनों का बहुधा अनुभव होने लगता है। इसीलिए प्रारम्भ में कुछ समय तक इस शक्ति के प्रभाव की अनुभूति किसी किसी को नहीं हो पाती। कारण से स्थूल तक मन को ढालने की प्राकृतिक क्रिया कुछ समय अवश्य ले लेती है। अतः हमें सतत प्रयत्न करते रहना चाहिए जिससे हम उचित समय पर लक्ष्य की प्राप्ति कर सकें। क्या एक बीज भूमि पर पड़ते ही अंकुरित हो वृक्ष बनकर पुष्पित एवं पल्लवित हो जाता है? कदापि नहीं? "ईश्वर कोई शाक-भाजी नहीं जिसे हम जब चाहें खरीद लें" (स्वामी विवेकानन्द) इस लिए इस जीते जागते वर्तमान में हमें कटिबद्ध हो ईश्वर प्राप्ति के निमित्त प्रयत्न एवं अभ्याय करना चाहिए। इस असाधारण वर्तमान में जिसमें भाग्यवश हमारे लिए एक अनोखा मार्ग एवं सच्चा गुरू सुलभ है, ऐसा गुरू जो अत्यन्त प्राकृतिक ढंग से हमें अपने लक्ष्य तक पहुंचा देने को बड़े प्यार एवं उत्सुकता से खड़ा इन्तजार कर रहा है!!!

ॐ तत् सत्

सहज मार्ग
की
* रूप रेखा *

श्री रामचन्द्र मिशन

पब्लिकेशन डिपार्टमेन्ट शाहजहांपुर [यू० पी०]   मूल्य ३० पै०

श्री रामचन्द्र मिशन

समर्थ गुरु महात्मा रामचन्द्र जी महाराज

फतेहगढ़ यू० पी०

के शुभ नाम पर

१९४५

में स्थापित हुआ

मिशन के अध्यक्ष

पूज्य श्री रामचन्द्र जी महाराज

शाहजहांपुर यू० पी०

मिशन की दैनिक प्रार्थना

हे नाथ, तू ही मनुष्य जीवन का ध्येय है।
हमारी इच्छायें हमारी उन्नति में बाधक हैं।
तू ही हमारा एक मात्र स्वामी और इष्ट है।
बिना तेरी सहायता तेरी प्राप्ति असम्भव है॥

दो शब्द

इस छोटी सी पुस्तक द्वारा जनता को श्री रामचन्द्र मिशन तथा उसकी साधना प्रणाली 'सहज मार्ग' का परिचय देने का प्रयत्न किया गया है। इसका उद्देश्य यह है कि सर्वसाधारण को यह भली भांति ज्ञात हो जावे कि ईश्वर-प्राप्ति की समस्या जो कि अब तक जटिल मानी गयी है बहुत ही सरल और साधारण है। किस प्रकार मनुष्य बिल्कुल साधारण ढंग से गृहस्थी में रहते हुए तथा साँसारिक कर्त्तव्यों को पूर्ण करते हुए ईश्वर प्राप्ति के उच्च शिखर तक पहुँच सकता है यह इन थोड़े पृष्ठों से स्पष्ट हो उठेगा। ब्रम्ह-विद्या के प्रेमी स्वयं ही इस पुस्तक को पढ़कर और इसके द्वारा बतलाई गई पद्धति पर चलकर इसकी सत्यता को परख लेंगे।

जे० आर० के० रायजादा

Superintendent,

Publication Department

Shri Ram Chandra Mission

Shahjahanpur (U. P.)

सहज मार्ग की रूप रेखा

महान व्यक्ति संसार में अनायास ही उत्पन्न नहीं हो जाते। प्रकृति का यह नियम है कि जब संसार को ऐसे व्यक्तियों की आवश्यकता होती है तभी वे उत्पन्न होते हैं। आधुनिक युग भौतिकता के अवलम्बन के कारण निरन्तर अवनति तथा पतन की ओर अग्रसर होता जा रहा है। स्वार्थ, पक्षपात तथा अहंकार वर्तमान जीवन के प्रमुख लक्षण हैं। सदाचारिता निराश्रित होकर भटक रही है। लगभग प्रत्येक मनुष्य में अधार्मिकता की प्रवृत्ति वृद्धि पा रही है। अनीश्वरवादिता की भावना प्रबल होती जा रही है। चतुर्दिक वातावरण पर अज्ञानता तथा पाप के बादल छाये हुए हैं। ऐसी भयंकर स्थिति में मानवता की रक्षा तथा मानव के सत्य-पथ प्रदर्शन हेतु समर्थ गुरु महात्मा श्री रामचन्द्र जी महाराज फतेहगढ के रूप में एक दैवी शक्ति अवतीर्ण हुई। इस महान आध्यात्मिक व्यक्ति ने २ फरवरी सन १८७३ को बसंत पंचमी के शुभ दिन शरीर धारण किया था। उनका आगमन आध्यात्मिक क्षेत्र में एक नवीन काल था। उनके प्रयासों से राजयोग जो शताब्दियों से बिल्कुल भुला दिया गया था पुनः आलोकित हुआ। वे ही प्रथम व्यक्ति थे जिन्होंने 'प्राणाहुति' की प्रणाली को जो एक दीर्घ अवधि से विस्मृत कर दी गई थी तथा जो राजयोग की आधार थी, पुनः स्थापित किया। उनके शिष्यों की हार्दिक इच्छा के फलस्वरूप उनके शुभ नाम पर ही वर्तमान श्री रामचन्द्र मिशन की स्थापना सन् १९४५ में हुई थी जिसके उत्तराधिकारी उन्ही के नामाराशी श्री रामचन्द्र जी महाराज शाहजहाँपुर हैं। मिशन का लक्ष्य है अपने गुरुदेव के पवित्रतम कार्य को आगे बढ़ाना, उन्नति पथ पर ले जाना तथा एक व्यवस्थित रूप से मानवता की सेवा का प्रयत्न करना। तब से

अब तक यह मिशन अपने सीमित साधनों द्वारा गिरी हुई जनता को जो अज्ञान के अन्धकार में भटक रही है तथा माया-मोह के बंधनों में जकड़ी हुई है, उठाने का सतत् प्रयत्न कर रहा है।

लक्ष्य:—मिशन का ध्येय है जाति-पाँति, धर्म-भेद व राष्ट्र-भेद की भावना से रहित होकर समय के अनुसार मानवता की सेवा करना। संसार की तमाम समस्याओं का निदान एकमात्र सत्य आध्यात्मिक शिक्षा से ही हो सकता है। प्रमुख समस्या है इस भौतिक जगत से निकटतम सम्पर्क। यदि यह सुलझ जाए तो समस्त समस्यायें एक क्षण में हल हो सकती हैं। यह तभी हो सकता है जब हमारी रहनी आध्यात्मिक ढंग की हो। आध्यात्मिकता का तात्पर्य है स्थूलता से सूक्ष्मता के उच्चतम शिखर तक ले जाना। सूक्ष्मता की अपरिवर्तनशील तथा अनादि स्थिति की प्राप्ति तथा उसमें सतत् अवस्थिति ही मिशन का ध्येय है।

प्रणाली:—मिशन की शिक्षा प्रणाली सहजमार्ग अथवा ईश्वर प्राप्ति का स्वाभाविक-पथ कहलाती है। वास्तव में यह प्राचीन राजयोग पद्धति है जिसको आधुनिक समय के अनुकूल तथा आज के साधारण सांसारिक जीवन की आवश्यकतानुसार परिवर्तित कर रक्खा गया है। इस पद्धति के अन्तर्गत साधना के लिए जो ढंग रक्खा गया है वह अत्यधिक सरल व साधारण है। ईश्वर सरल है अतः पाने का साधन भी सरल होना चाहिए। वही साधन सर्वोत्तम है जिसके द्वारा मनुष्य अधिक से अधिक ईश्वरीय गुण को ग्रहण कर सके। इस प्रणाली के द्वारा निम्न से निम्न व्यक्ति को भी यह स्वर्णिम अवसर प्राप्त होता है कि वह अपने दूषित आवरणों को एक क्षण में नष्ट करके ईश्वरीय मार्ग पर आश्चर्यजनक-गति के साथ आगे बढ़े। इसकी विधि भी बड़ी सरल है। पूर्णत्व को प्राप्त हुए सदगुरु के सहारे और उसके संरक्षण में किए गए ध्यान के अतिरिक्त और किसी प्रकार के लम्बे-चौड़े अभ्यास इसमें नहीं हैं इसमें किसी प्रकार की बाह्य क्रियाओं को नहीं रक्खा गया है। इसमें न तो कुछ अधिक करने पर जोर दिया जाता है और न छोड़ने पर।

वास्तव में यह विधि 'दो और लो' अथवा 'अभ्यास और अनुभव' पर आधारित है केवल 'पढ़ने और प्रसन्न होने पर' नहीं। यहां पर मानने या न मानने का प्रश्न ही नहीं उठता है बल्कि इसमें प्रत्येक बात सरल और सीधीसादी है जिसको अभ्यास द्वारा प्रत्येक जिज्ञासु अनुभव कर सकता है। यह वाह्य तप, त्याग, दमन तथा अन्य अस्वाभाविक साधना के पक्ष में नहीं है। किसी व्यक्ति को साधु के वस्त्रों को ग्रहण कर एकांत जीवन विताने को भी यह पद्धति आवश्यक नहीं समझती। यह विचार कि साँसारिक जीवन आध्यात्मिक क्षेत्र में बाधा है बिल्कुल व्यर्थ तथा अस्वाभाविक है। करना केवल इतना है कि साँसारिक जीवन को इस प्रकार से बदल दे कि उस पर चतुर्दिक आध्यात्मिकता का रंग चढ़ जावे। यह बड़ी सुगमता से किया जा सकता है। यदि हम प्रत्येक कार्य को कर्त्तव्य समझकर ग्रहण करें—अपने स्वार्थ अथवा इच्छाओं की पूर्ति के लिए ही कार्य न करें तो यह कार्य सरल है।

प्राणाहुति:—शारीरिक, सामाजिक, नैतिक तथा आध्यात्मिक दृष्टि से इस गिरे हुए समय में सत्य तथा धर्माचरण के प्राचीन स्तर को जो हमारे धर्म में बतलाए गये हैं स्थिर रखना लगभग असंभव है। इसका एकमात्र कारण है कि अधिकांश मनुष्यों के मन का रुझान ठोस भौतिकता की ओर हो गया है अतः हमें केवल इतना करना है कि हम मन की वृत्तियों को ठीक दिशा की ओर मोड़ दें यही समस्त साधनाओं और अभ्यासों का लक्ष्य है परन्तु दुर्भाग्यवश जितनी भी साधनाये इस लक्ष्य की प्राप्ति हेतु रक्खी गई है यंत्रवत् हैं जो वस्तुओं के केवल वाह्य पक्ष का ही स्पर्श करती हैं अतः यह लाभकारी नहीं है। इसके अतिरिक्त मन को वशवर्ती करने के लिए दमन आदि की अनेक क्रियाओं में सफलता पाना भी प्रायः असंभव सा ही है क्योंकि इन क्रियाओं से प्रतिक्रियायें उत्पन्न होती हैं जिन पर विजय पाना बहुधा असंभव होता है। यही कारण है कि विद्वान धर्मध्वजों की शिक्षा एवं उपदेशों के होते हुए भी जन साधारण अज्ञानता के अंधकार

में मुक्ति की आशा से रहित होकर भटकता है। मनुष्य को सुधारने का केवल एकमात्र उपाय यही है कि जनसाधारण की मनोवृत्तियों का उचित सुधार किया जाए। इसके लिए सबसे प्रभावशाली विधि प्राणाहुति है जो राजयोग का आधार हैं। यह एक यौगिक क्रिया है जिसके द्वारा गुरु अपनी आत्मिक शक्ति द्वारा अभ्यासी के मन को उचित रूप से ढालने के लिए समस्त बाधाओं तथा उलझनों को दूर कर अभ्यासी की सोई हुई आँतरिक शक्तिओं को जाग्रत कर देता है। प्राचीनकाल में भारत में बड़े बड़े महात्मागण इसी आश्चर्यजनक शक्ति का प्रयोग जनसाधारण की आध्यात्मिक उन्नति के लिये करते थे। इसके लिये इतिहास में हमें अनेक उदाहरण मिलते हैं। परन्तु पतन के इस युग में हम इसे पूर्ण रूप से विस्मृत कर बैठे हैं। यहाँ तक कि कुछ ही ऐसे व्यक्ति होंगे जिनको इस पर विश्वास हो। वे निम्न स्तर की कलाओं तथा टैलीपैथी तथा हिपनोटिज्म से भलीभांति परिचित हैं जो उनकी भौतिक समझ में सरलता से आ जाता है इसलिए वे इसको भी हिपनोटिज्म ही समझने लगते हैं परन्तु वास्तव में उन्हें दोनों में से एक का भी ज्ञान बिल्कुल नहीं होता। दोनों के महत्व अन्तर को स्पष्ट करते हुये मैं संक्षेप में कह सकता हूं हिपनोटिज्म मनुष्य की भौतिक शक्तिओं पर आधारित है तथा यह यौगिक क्रिया प्राण की सूक्ष्म शक्तियों से जो आत्मा से सम्बन्धित है, इसमें भौतिकता का लेशमात्र अंश नहीं होता। दोनों विधियों से व्यक्ति के मस्तिष्क पर पड़ा प्रभाव भी पर्याप्त मात्रा में भिन्न होता है। प्रथम अवस्था में व्यक्ति की समझ छिन्न भिन्न हो जाती है और वह अपने स्वामी के हाथ में कठपुतली की भाति कार्य करता है परन्तु दूसरी अवस्था में अभ्यासी कीसमझ तथा इच्छाशक्ति आश्चर्यजनक गति से बढ़ती जाती है। उसकी आत्मिक शक्ति जागृत हो जाती है और वह अपने अन्दर–बाहर सम्पूर्ण में शान्ति और हल्केपन का अनुभव करने लगता है। सहजमार्ग में ईस्वरीय प्रेरणा यौगिक प्राणाहुति द्वारा ही उत्पन्न की जाती है।

यही इसकी महती विशेषता है जिसके द्वारा एक साधारण व्यक्ति आध्यात्मिकता की उच्चतम दशा को बहुत कम समय में और बड़े सहज ढंग से प्राप्त कर लेता है। इस पद्धति द्वारा प्राप्त अभ्यासिक परिणाम ही इस प्रणाली की उत्तमता का प्रमाण है। प्रत्येक व्यक्ति इसका अनुभव व्यक्तिगत रूप से कर सकता है।

कार्य प्रणाली:—प्राणाहुति द्वारा प्रदत्त ईश्वरीय–प्रेरणा अभ्यासी के मन पर प्रभाव डालती है और उसको चेतना के उच्च स्तर पर लाने में सहायता करती है जिसका फल यह होता है कि अभ्यासी अपने भीतर जागृति का अनुभव करने लगता है। मन की वृत्तियाँ अधिक से अधिक ईश्वर की ओर उन्मुख होती चली जाती है और पहले की तुलना में वह अपने को अधिक शान्त अनुभव करने लगता है। इस आध्यात्मिक पद्धति के अन्तर्गत यह प्रथम पग है। अब इस प्रकार से पड़ा हुआ प्रभाव चेतना के उन गहन पत्तों पर कार्यशील हो जाता है जो मानव के सूक्ष्म रूप से सम्बन्धित हैं। साधारणतय: प्रारम्भ में चेतन मन को बिल्कुल ही स्पर्श नहीं किया जाता केवल ऐसी विशेष स्थितियों में जबकि यह अतिशय आवश्यक न हो। प्राणाहुति का प्रभाव कारण शरीर पर डाला जाता है और उस में ईश्वरीय–छाप वनने लगती है। यह छाप बीज रूप में भोग के लिये विकसित होने लगती है शीघ्र ही अपने आप आरम्भ हो जाते हैं जिससे प्रभाव प्रसारित होने लगता है और थोड़े ही समय बाद यह सूक्ष्म मन तक फैल जाता है। इसके पश्चात् यह चेतन मन पर आता है जो क्रमश: शुद्ध होने लगता है। इसी स्तर पर अभ्यासी अपनी आँतरिक प्रवृतियों में सूक्ष्म परिवर्तन का अनुभव करने लगता है। इसी कारण आरम्भ मेंबहुधा अभ्यासी किसी प्रकारका प्रभाव अपने ऊपर अनुभव नहीं कर पाता परन्तु इस प्रकार पड़ा हुआ प्रभाव गहरा होता है और स्थाई होता है क्योंकि यह प्रणाली केन्द्रापसारी (Centrifugal) होने के कारण इसका प्रभाव केन्द्र से आरंभ होकर परिधि पर आता है। इस

प्रकार बिना शारीरिक और मानसिक परिश्रम ही मन की शुद्धि सहज रूप से होती चलती है। लगातार ध्यान करने से मन चेतन अवस्था को प्राप्त होता जाता है और धीरे – धीरे स्थूल मन उसमें एकाकार होता जाता है। इससे अभ्यासी के अन्दर विवेक बुद्धि जागृति होने लगती है। फल यह होता है कि क्रमश: संसार की परिवर्तनशील वस्तुओं में आकर्षण कम होने लगता है और हम अधिक से अधिक वास्तविकता की ओर बढ़ने लगते हैं इसका अर्थ है कि वैराग्य की स्थिति उत्पन्न होनी आरम्भ हो जाती है। इस प्रकार का वैराग्य जो बलपूर्वक साँसारिक वस्तुओं को त्याग कर लाया जाता है अस्वाभाविक है तथा वैराग्य के वास्तविक अर्थ से रहित है। सहजमार्ग में इस प्रकार के त्याग को मान्यता नहीं दी जाती। साँसारिक वस्तुओं में हमारा जो अनुचित लगाव होता है उस लगाव की भावना से रहित होना ही वास्तव में वैराग्य है। इसका वह तात्पर्य नहीं है कि उन कर्त्तव्यों को भुला दिया जाये जो स्वयं, समाज तथा संसार की ओर से हम पर लागू हैं। जब हम अनावश्यक मोह से छुटकारा पा लेते हैं तो हमारे समस्त साँसारिक कार्य कर्त्तव्य का रूप धारण कर लेते हैं। आकर्षण अथवा घृणा की भावना से रहित होकर कर्त्तव्य के लिए कर्त्तव्य निर्वाहन भक्ति की उच्चतम अवस्था हैं। उचित पथ-प्रदर्शन से ध्यान द्वारा अभ्यासी में यह स्थिति स्वयं ही विकसित हो जाती है। यद्यपि यह साधारण प्राप्ति नहीं है फिर भी इस प्रणाली के अन्तर्गत यह आरम्भिक स्थिति है। इच्छा रहितता इसका फल होता है अत: संस्कारों का बनना कम होता जाता है और अन्त में बंद हो जाता है। संस्कारों का बनना बंद होने का तात्पर्य है पुनर्जन्म के चक्र से छुटकारा। इस प्रकार हम जन्ममरण के अन्तहीन चक्करों से छुटकारा पा जाते हैं। परन्तु यह अंत नहीं है। आध्यात्मिक उन्नति अब भी शेष रहती है। यह लम्बा विषय है जिसका वर्णन यहां नहीं हो सकता।

गुरू का कार्य:—आध्यात्मिक जीवन में सिखाने वाले का महत्वपूर्ण

स्थान है। सहजमार्ग में यह और भी अधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि इसमें साधना का पूर्ण उत्तरदायित्व गुरु पर होता है परन्तु यह तभी होता है जब अभ्यासी इच्छा श्रद्धा एवं विश्वास के साथ अपने को गुरु के हवाले कर देता है। अतः एक योग्य गुरु का चुनाव एक महत्वपूर्ण कार्य है परन्तु उसके लिये यह आवश्यक है कि ध्येय बिल्कुल निश्चित हो। ध्येय के विषय में मनुष्यों के विभिन्न विचार हैं और उन्हीं के अनुकूल वे पथ-प्रदर्शक खोज लेते हैं किन्तु वे व्यक्ति जो आध्यात्मिक-पथ पर चलकर ब्रम्ह में एकाकार हो जाना चाहते हैं उनके लिये पथ प्रदर्शक भी उच्चतम स्थिति प्राप्त व्यक्ति होना चाहिये जो प्राणाहुति द्वारा अपनी आत्मिक उन्नति को दूसरों की उन्नति के लिये लगा सकने में समर्थ हों। वास्तव में आध्यात्मिकता की उच्चतम स्थिति को प्राप्त करना बहुत कम संभव है जब तक समर्थ गुरू अपनी योगिक प्राणाहुति से सहायता न करे। यह गुरु की महत् मानसिक-शक्ति पर निर्भर है कि वह अभ्यासी की आँतरिक शक्तियों को विधिवत् ठीक पथ पर ले आये। संक्षेप में, यह गुरू ही है जो वास्तविक ईश्वरीय-प्रेरणा प्रदान करता है। गुरु ही ऐसा है जो अभ्यासी की सोई हुई मानसिक शक्तियों को जागृत कर गतिशील बना देता है और मन का सुधार आरम्भ हो जाता है। केवल गुरु ही ऐसा है जो अभ्यासी के मन की बाधाओं एवं उलझनों को दूर करता है और अपनी मानसिक शक्ति से आध्यात्मिकता के पथ पर उसे सहारा देता चलता है। यदि वास्तव में हमने ध्येय उच्चतम रक्खा है तो हमें ऐसे ही गुरु की खोजना चाहिये।

अभ्यासी के कर्तव्यः—सहजमार्ग में यद्यपि अभ्यासी के लिये कोई वाह्य आडंबर या बाह्य क्रियाये आवश्यक नहीं हैं फिर भी कुछ ऐसी बातें आवश्यक है जिनका अभ्यासी में होना अनिवार्य है।

प्रथम तो यह है कि अभ्यासी को अपना अंतिम ध्येय निश्चित कर लेना चाहिए। बिना इसके पूर्ण सफलता असंभव है। बहुधा लोग पूजा-

पाठ या अन्य क्रियायें बिना ध्येय पर दृष्टि जमाये करने लगते हैं। परिणाम यह होता है कि जीवन भर उसी में उलझे रह जाते हैं और कहीं के भी नहीं रहते हैं। यह अवश्य है कि कुछ दिल बहलाव के साधन हाथ लग जाते हैं। साधारणतय: लोग पूजा–पाठ बस इस अभिप्राय: से करते हैं कि उसके द्वारा उनकी साँसारिक कामनाओं की पूर्ति होती रहे और वे शारीरिक कष्ट से बचे रहें। इसका अर्थ यह हुआ कि उनकी दृष्टि संसारी सुख से परे किसी ऊंचे लक्ष्य की ओर जाती ही नहीं। ऐसे लोगों के सम्बन्ध में ईश्वर–प्राप्ति का विषय उठाना ही व्यर्थ है। ऐसे भी लोग हैं जिनका रुझान ईश्वर की ओर कुछ होता है परन्तु वह केवल इच्छाओं की पूर्ति के लिये या साँसारिक सुख के लिए ही है ऐसी दशा में ईश्वरोपासना का कोई अर्थ नहीं रहता। ऐसे लोग बहुत कम मिलेगे जो ईश्वर–प्राप्ति के उद्देश्य से पूजा उपासना में लगे हों परन्तु यह भी है कि ईश्वर प्राप्ति का लक्ष्य होने पर भी एक बड़ी गलती यह होती है कि वह ईश्वर का एक विशेष कल्पित रूप लिये हुये चलते हैं और उसी रूप में 'उसकी' प्राप्ति चाहते हैं इस प्रकार वे रूप, नाम और आकार के झगड़ में फँसकर वास्तविकता से सदा दूर ही बने रहते हैं। ईश्वर को उसके वास्तविक रूप में मानने वाले संभवत: बहुत ही कम मिलेगे यही कारण है कि ईश्वर-प्राप्ति इतनी जटिल समस्या बन गई है। उचित तो यही है कि ईश्वर को 'जैसा वह है' अपने ख्याल में लेकर उसी को अंतिम ध्येय मान लें और उसी की प्राप्ति के लिए अग्रसर हो जायें।

दूसरी बात यह है कि अभ्यासी में ईश्वर प्राप्ति की प्यास अथवा लगन होना आवश्यक है और उसे उसका जीवन का सबसे प्रथम और मुख्य लक्ष्य मान लेना चाहिए। सफलता तभी प्राप्त हो सकती है जबकि हमारे अन्दर दृढ़ लगन हो। बहुधा लोग पूजा–पाठ को अपने मनोरंजन का साधन बना लेते हैं और उसमें रोचकता को खोजते हैं। यह अधिकतर तभी होता है जब कोई ऊंचा लक्ष्य उनकी दृष्टि में नहीं होता। परिणाम यह होता है

कि वे वास्तविक–पथ से सदैव दूर ही रहते हैं और सूक्ष्मता की ओर जाने के स्थान पर स्थूलता की ओर बढ़ते जाते हैं। लगन का अर्थ है लक्ष्य की प्राप्ति, बिना चैन न आना तथा हम बेकरारी से उसके लिये तड़पते रहें। यह मानी हुई बात है कि यदि हमारी प्यास तीव्र है तो किसी न किसी प्रकार हम जल भी खोज ही लेंगे इसी भाँति यदि हमारे अन्दर ईश्वर–प्राप्ति की प्यास या लगन प्रबल है तो ईश्वर का पाना कोई कठिन बात नहीं रह जाती।

तीसरी बात है उचित साधन को अपनाना। यह ध्येय तथा लगन पर आधारित है यदि हमारा ध्येय वही है जैसा कि वास्तव में होना चाहिए और उसकी प्राप्ति की लगन भी प्रबल है तो यह सम्भव ही नहीं कि गलत मार्ग पर हमारा पग जाये। ऐसे ध्येय की प्राप्ति के लिए यह आवश्यक है कि हम वही साधन अपनायें जिनके द्वारा हमारा मानसिक सुधार उचित रूप से होता जावे और हमारे अन्दर संतुलन की अवस्था उत्पन्न हो जाये। यह स्पष्ट है कि ईश्वर–प्राप्ति केवल शरीर या मस्तिष्क से सम्बन्ध रखने वाला विषय है जिसके लिये हमें शारीरिक साधन और बौद्धिक प्रयासों की आवश्यकता है। यह तो मन का विषय है जिसके लिए मन को वास्तविक दशा पर लाना अति आवश्यक है सहजमार्ग साधना का यही उद्देश्य है और इसी कारण से यह अत्यन्त सरल और उपयोगी मार्ग माना गया है।

इस साधना का मुख्य अंग ध्यान है। इसी के द्वारा समस्त आध्यात्मिक

दशायें स्वयं उत्पन्न होती जाती हैं और अभ्यासी लक्ष्य की ओर अग्रसर होता जाता है परन्तु ध्यान के लिए भी यह आवश्यक है कि सही ढंग से किया जाये। स्थूल रूप या आकार पर ध्यान जमाना वास्तविक लक्ष्य प्राप्ति के लिए अत्यन्त हानिकारक है। हमें तो स्थूलता से हटकर सूक्ष्मता की ओर बढ़ना है इसलिए आवश्यक है कि ध्यान के लिए भी हम वैसा सूक्ष्म आधार ख्याल में ले आवें। इसी कारण सहजमार्ग में ईश्वरीय-गुण को आधार मानकर ध्यान किया जाता है।

ईश्वर करे सबमें सच्ची जागृति पैदा हो और दिल ऐसा बने कि सच्ची चीज को ग्रहण करे।

सहज मार्ग में अभ्यासी की भूमिका

रामचन्द्र

श्रीरामचन्द्र मिशन, शाहजहाँपुर

प्रथम संस्करण : १९८१ : २००० प्रतियाँ

© प्रकाशक : प्रकाशन विभाग,
श्रीरामचन्द्र मिशन
शाहजहाँपुर (उ०प्र०)
भारतवर्ष

मूल्य ४·००

एकेडमी प्रेस, दारागंज, इलाहाबाद द्वारा मुद्रित

प्रकाशकीय टिप्पणी

हर अभ्यासी का उद्देश्य अन्तिम सत्य की अनुभूति करना है। सहज मार्ग, जैसा कि हम सभी जानते हैं, राजयोग का एक नवीन और मौलिक दैवी मार्ग है—ईश्वरप्राप्ति की एक सरल एवं व्यावहारिक पद्धति। हम सचमुच ही बड़े भाग्यशाली हैं कि इस प्रकार की एक उच्चतम प्रभावकारी प्रणाली हमें उपलब्ध है।

फिर भी यह अनुभव किया गया है कि इस सरल, कर्मकाण्डविहीन और स्वाभाविक मार्ग का अनुसरण करते समय अपने महान प्रयत्न में संलग्न अभ्यासी को अपनी वास्तविक और महत्वपूर्ण भूमिका को सदैव ध्यान में रखे रहना चाहिए। इस उद्देश्य से उसकी भूमिका के सैद्धान्तिक और व्यावहारिक, दोनों पक्षों को, स्वयं महान गुरु (परम पावन श्री रामचन्द्र जी महाराज, संस्थापक अध्यक्ष, श्री रामचन्द्र मिशन, शाहजहाँपुर, उ० प्र०) की कृतियों से लेकर उपयुक्त रूप में इस छोटे से प्रबन्ध में प्रस्तुत किया गया है। हमें आशा है, वास्तविकता के लिए बेचैन अभ्यासियों के लिए यह अत्यन्त सहायक सिद्ध होगा।

लक्ष्मी शङ्कर
अधीक्षक, प्रकाशन विभाग
श्री रामचन्द्र मिशन
शाहजहाँपुर, उ० प्र०

बसन्त पंचमी
९-२-१९८१

अनुक्रम

अ. सैद्धान्तिक	५–८
१. वैराग्य पैदा करना	५
२. ध्यान की पूर्व तैयारी	७
ब. व्यावहारिक	९–१६
३. ध्यान	९
४. निर्मलीकरण या सफाई	१४
५. प्रार्थना	१५
स. तीव्र प्रगति के लिए कुछ और आवश्यक सूत्र	१७–२३
६. सतत स्मरण	१७
७. भक्ति	१८
८- समर्पण	२१

(अ) सैद्धान्तिक

१. वैराग्य पैदा करना

हम माया से कभी भी मुक्त नहीं हो सकते जब तक हम वैराग्य पैदा न कर ले।

यह सत्य है कि यदि हम वैराग्य न पैदा करें तो माया से कभी भी मुक्त नहीं हो सकते। परन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं है कि हम अपने घर, परिवार और अन्य सांसारिक सम्बन्धों से अपने सम्बन्ध विच्छंद कर एक धार्मिक भिक्षुक का जीवन अपना लें। मैं उन लोगों से सहमत नहीं हूँ जिनके अनुसार वैराग्य उत्पन्न करने का एक मात्र मार्ग सारे सांसारिक बन्धनों को तोड़कर घर परिवार से दूर किसी निर्जन स्थान में निवास करना है। इस प्रकार का हठात त्याग शायद ही कभी सच्चा उतरता पाया जाता है क्योंकि बहुत सम्भव है कि इस प्रकार के संसार से बलात् बिलगाव के बावजूद भी वे अन्तर से उससे चिपके रहें। निःसंदेह हमें एक गृहस्थ के रूप में बहुत सी बातों पर ध्यान देना होता है। हमें अपने परिवार का पोषण करना होता है। हमें अपने बच्चों की शिक्षा का प्रबन्ध करना होता है; हमें उनकी आवश्यकताओं पर ध्यान देना होता है; हमें उन्हें शीत ताप से बचाना होता है; इत्यादि, इत्यादि। इन आवश्यकताओं के लिए हम कमाते और धन, सम्पत्ति रखते हैं। वास्तविक बुराई तो अपने से सम्बन्धित वस्तुओं से हमारा अनावश्यक राग ही है। यही हमारे दुःख का मुख्य कारण है। परन्तु यदि हम, इस योग्य हो सकें कि हर कार्य अपना कर्तव्य समझ कर बिना आकर्षण या विकर्षण के कर सकें तो हम एक प्रकार से सांसारिक बन्धनों से मुक्त हैं और संसार का हमने वास्तविक अर्थ में त्याग कर दिया है हालांकि हम बहुत सी चीजें रखते तथा उनका उपयोग करते हैं। तब हमारी हर वस्तु, हमें सौंपे गये कर्तव्यों को करने के लिए, ईश्वर का पवित्र धरोहर मालूम पड़ेगी। त्याग, वास्तव में, सांसारिक वस्तुओं के प्रति वैराग्य की भावना है न कि उनका असंचयीकरण। इस प्रकार गृहस्थ जीवन में, जहाँ सांसारिक संम्बन्धों एवं वस्तुओं का रखना अनिवार्य है,

त्याग तथा साक्षात्कार के मार्ग में कोई अवरोध नहीं है। परन्तु तभी जब व्यक्ति अपने से सम्बन्धित वस्तुओं से अनावश्यक रूप से चिपटा न हो। सन्तों के ऐसे अनगिनत उदाहरण हैं जिन्होंने उच्चतम कोटि की पूर्णता सारे जीवन गृहस्थाश्रम में रह कर ही प्राप्त किया है। त्याग, वास्तव में मन की एक आन्तरिक अवस्था है जो वस्तुओं के क्षणिक और परिवर्तनशील स्वभाव को उजागर करती है तथा ऐसी वस्तुओं से वैराग्य की भावना पैदा करती है। उसकी दृष्टि प्रतिक्षण वास्तविकता पर टिकी रहती है जो अपरिवर्तनशील और अक्षर है। और, वह आकर्षण-विकर्षण की भावना से मुक्त रहता है। वैराग्य का यही वास्तविक अर्थ है। जब हमारे मन की यह अवस्था हो जाती है तो हम इच्छाओं से छुटकारा पा जाते हैं। जो कुछ भी हमें मिल जाता है हम उसी में संतुष्ट रहते हैं। इच्छाओं का अन्त होने का अर्थ संस्कारों के निर्माण का बन्द हो जाना है। इसके बाद जो बच रहता है वह पूर्वकृत संस्कारों का केवल भोग है जिन्हें अपने जीवन में समाप्त करना होता है। प्रकृति भी इस प्रक्रिया में भोग के लिए क्षेत्र बनाकर हमारी सहायता करती है जिससे हमारे कारण शरीर पर से हमारे विचारों और कार्यों के भोग (संस्कार) मिट सकें। जब यह आवरण पिघल जाते हैं तो हम अस्तित्व के सूक्ष्म रूपों को धारण करने लगते हैं।

जो भी व्यक्ति इस संसार में पैदा हुआ है उसे कष्ट का स्वाद लेना ही पड़ेगा। इनसे कोई बच नहीं सकता। जब मैं संसार को देखता हूँ, मैं इसे बहुत कष्टप्रद पाता हूँ। कुछ लोग शारीरिक पीड़ा से कहर रहे हैं, कुछ अपने प्रियजनों के निधन से दुःख पा रहे हैं और अधिकांश लोग हर पग पर सफलता प्राप्ति के लिए बेचैन दीख पड़ते हैं। हम इससे छुटकारा पाने के लिए तपस्या करते हैं। ऋषियों ने तो तपस्या के प्रति अपने को पूर्णरूपेण समर्पित किया। जो भी राग से उत्पन्न होता है दुःख है। कष्ट एवं आनन्द दोनों दुःख के सहायक (सृजन कर्त्ता) हैं। इन दुःखों से छुटकारा पाने का शुद्धतम् प्रकार के ईश्वरीय विचार के प्रति अपने को समर्पित करने के अतिरिक्त अन्य कोई उपाय नहीं।

संसार को त्याग कर तपस्या के लिए जंगलों में जाने की हमें आवश्यकता नहीं है। सांसारिक और आध्यात्मिक जगत दोनों को साथ-साथ समान रूप से देदीप्यमान होते हुए चलने देना है। यदि कोई

व्यक्ति अपना गृहस्थ धर्म निभाते हुए ईश्वर साक्षात्कार भी करता है तो वह किसी भी प्रकार घाटे में न रहेगा। यदि हमें सफलता प्राप्त करनी है तो हमें दोनों पंखों से उड़ना है। सामान्य लोगों की यह एक भोंड़ी धारणा है कि ईश्वर को जंगलों में ही ढूँढ़ा जा सकता है। पर मेरा विचार है कि उसे हृदय में ढूँढ़ना चाहिए। एक आदमी घरेलू कार्य करते हुए भी ईश्वर भक्ति में व्यस्त रहता है। आप कह सकते हैं कि इन दोनों चीजों में विसंगति और विरोध है। पर, बात ऐसी नहीं है। अंत में ईश्वरीय प्रज्ञा कार्य करने लगती है और आदमी परा बुद्धि से अपना कर्तव्य करता है।

इस प्रकार वैराग्य तभी प्राप्त किया जा सकता है जब मनुष्य पूरी तरह देवत्व की ओर झुका हुआ हो। जब ऐसा होता है तो वह स्वाभाविक रूप से स्वयं अपने और अपने से सम्बन्धित वस्तुओं के प्रति भी अन्यमनस्क सा रहने लगता है। इस प्रकार वह न केवल शरीर-चेतना खो देता है अपितु आत्म-चेतना भी। उसके बाद जो बचता है वह मृतप्राय रहनी अथवा जीवित शव की दशा के अतिरिक्त और कुछ नहीं।

२. ध्यान की पूर्व तैयारी

एक सरल स्वाभाविक मुद्रा (आसन) अन्तिम-स्थिति के लिए हमारा मार्ग प्रशस्त करता है।

जब मनुष्य में मूल स्रोत में वापस जाने का विचार स्पन्दित हुआ तो उसके लिए आवश्यक हो गया कि वह इस गुप्त क्रियाशीलता को यथासंभव गुप्त क्रियात्मकता प्रदान करे। वह इसके लिए उपाय ढूँढ़ने लगा। अंत में उसकी समझ में यह आया कि जिस प्रकार गुप्तगति परम स्थिति—जिससे वह सम्बन्धित था—से अपेक्षाकृत ठोस था, उसी प्रकार उसे भी किसी ठोस का सहारा लेना चाहिए ताकि वह वास्तविकता के वांछित आदर्श को प्राप्त कर सके। इससे उसने यह निष्कर्ष निकाला कि उसे अपने में एक प्रकार की सिकुड़न या अन्तर्खिचांव पैदा करनी चाहिए जैसा कि प्रलय के समय हुआ था। आत्मा जिस प्रकार सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में व्याप्त है उसी प्रकार मनुष्य में सर्वव्याप्त है—यहाँ ब्रह्माण्ड का अर्थ समुच्चयार्थ में लिया गया है। जब सिकुड़न प्रारम्भ हो जाता है तब प्रलय की स्थिति शुरू हो

जाती है। मनुष्य में उस प्रकार की सिकुड़न उसके व्यक्तिगत प्रलय की ओर ले जाती है। इसका अर्थ यह हुआ कि वह अपनी ठोस अवस्था से वास्तविक अवस्था की ओर जाने लगता है। सिकोड़ सदा नीचे से प्रारम्भ होता है और अपनी उर्ध्वमुखी प्रवृत्ति के कारण शनैः शनैः ऊपर की ओर जाता है। इसलिए उपर की ओर जाने के लिए आवश्यक है कि वह नीचे से सिकुड़न आरम्भ करे। सिकुड़न का रूप केवल यही हो सकता है कि अपने पैरों और तत्सम्बन्धित अंगों को एक मुद्रा में लाये तथा उन्हें स्थिर रखे। चाहे जिस किसी भी तरीके से यह किया जाय अंत में उसका रूप एक आसन का ही हो जायगा। यह आवश्यक है क्योंकि यह अन्तिम स्थिति (Ultimate) के लिए हमारा मार्ग प्रशस्त करता है। मुद्रा सदा वही होनी चाहिए। इसका कारण यह है कि इस प्रकार वह अपने को बड़ी शक्ति—उसी चीज—से संयुक्त कर लेता है जिसे वह अपने उददेश्य विशेष की प्राप्ति के लिए प्रारम्भ में ही ले लेता है। अतः वास्तविकता से संयुक्त वह रूप (मुद्रा) उसे उसके आरंभिक अभ्यास में अत्यधिक सहायक होता है।

बहुत प्राचीन काल से ध्यान की अवस्था में रीढ़ की हड्डी, गरदन और सिर का एक सीधी खड़ी अवस्था में होना अत्यन्त लाभदायक माना गया है क्योंकि ऐसा विश्वास रहा है कि दैवी कृपा की धारा इस मुद्रा में अभ्यासी पर सीधी उतरती है। परन्तु हमारी पद्धति में इस पर विशेष बल नहीं दिया जाता है। मैं अभ्यासियों को सामान्यतौर पर प्राकृतिक रूप में आसान मुद्रा में बैठने की सलाह देता हूँ। वे लोग भी जो दृढ़ और सीधी मुद्रा अपनाते हैं आनन्ददायक मन की लवलीनता के प्रारम्भ होने पर अपने आप ही थोड़ा आगे की ओर झुक से जाते हैं। इसलिए चेतना की उच्चतर अवस्थाओं तक पहुँचने के लिए भी इसे अधिक प्राकृतिक माना जा सकता है। सत्य तो यह है कि एक अपेक्षाकृत कम महत्व की बात पर किसी प्रकार का विवाद अप्रासंगिक प्रतीत होता है।

ध्यान के लिए प्रातः भोर में बैठना अच्छा होता है, अथवा यदि यह संभव न हो तो कभी भी अभ्यासी को सुविधानुसार निश्चित समय पर बैठना चाहिए। बाहरी चीजों से परेशान नहीं होना चाहिए बल्कि अपने कार्य में संलग्न रहना चाहिए और ऐसा सोचना चाहिए कि अभ्यास में और अधिक लीन हो जाने की आवश्यकता महसूस कराने में वे एक प्रकार से सहायक ही रहे हैं।

(ब) व्यावहारिक

३. ध्यान

जब हम ध्यान करते हैं तो हमारे अन्दर निहित केन्द्रिय शक्ति कार्यरत रहती है।

सहज मार्ग की प्रशिक्षण प्रणाली में हम पातंजलि योग के सातवें सोपान, ध्यान, से प्रारम्भ करते हैं और इसके अभ्यास के लिए हम अपने मन को एक विन्दु पर नियत करते हैं। उसके पूर्व के सोपान अलग से नहीं लिये जाते हैं पर जैसे-जैसे हम ध्यान में बढ़ते हैं वे स्वतः ही आते जाते हैं। इस तरह से हमारे बहुत सारे श्रम और समय की बचत हो जाती है। कुछ संस्थाओं में अभ्यास के लिए नियत पद्धति को बहुधा गुप्त रखा जाता है। केवल औपचारिक रूप से संस्था को अपनाने वालों को ही वह बताया जाता है। इसका क्या उद्देश्य है समझ में नहीं आता है। प्रकृति ने कोई चीज गुप्त नहीं रखी है और मैं सोचता हूँ कि दैवी मार्ग पर चलने वाले को भी कुछ गुप्त नहीं रखना चाहिए।

हमारी संस्था में हृदय पर ध्यान की प्रणाली है। पातंजलि ने भी वही विधि अनुमोदित की है। इसके अन्दर एक बड़ा दर्शन निहित है। हम सदैव अपने को सांसारिक चीजों में व्यस्त पाते हैं। यदि हमारे पास कोई कार्य नहीं है तो हमारे खाली घड़ियों में हमारे विचारों को मानो पंख लग जाते हैं। हम सदा ही उथल-पुथल में और अव्यवस्थित से रहते हैं। हमारा व्यक्तिगत मन इस प्रकार की एक विशेष क्रिया-शीलता का आदी हो गया है और इस प्रकार हमने हर चीज को उलटा-पलटा कर दिया है। हमारे बुरे कर्मों में हमारे विचारों और कार्यों का बड़ा योगदान होता है। जब हम विभिन्न प्रकार की भावनाओं और विचारों के सम्पर्क में रहते हैं तो वे हमारी भाव प्रवण अनुभूतियों और इन्द्रियों पर छाप छोड़ देते हैं। सभी इन्द्रियाँ विकृत हो जाती हैं और गलत मार्ग अपना लेती हैं। इस प्रकार के छाप इन्द्रियों को चट्टान की भाँति ठोस बना देती है जिनमें कोई बोध नहीं होता। निश्चय ही आत्मा इससे अप्रभावित रहता है परन्तु हम ऐसे अवरोध

और आवरण उत्पन्न कर लेते हैं कि यह ककून (रेशन के कीड़े) की भाँति उनसे ढका या लिपटा ही रहता है। हम आत्मा में झांक भी नहीं सकते हैं, इसके साक्षात्कार की तो बात ही छोड़ दीजिए। अपने दूषित विचारों और कार्यों से हम अपनी विवेक शक्ति और सत्य परख की क्षमता भ्रष्ट कर देते हैं। जिन लोगों में इस प्रकार की ठोसता घर कर लेती है वे राजयोग की दीक्षा नहीं लेना चाहते हैं। इसीलिए हम जो कुछ कहते हैं लोग अनसुना कर देते हैं। हठयोग का कितना भी अभ्यास वास्तविक साक्षात्कार नहीं करा सकता क्योंकि आज्ञा चक्र के बाद यह असफल हो जाता है और इसके बाद भी बहुत सी अवस्थाएँ पार करने को रह जाती हैं। इसलिए राजयोग हीं एकमात्र वह साधन है जो अन्त तक ले जा सकता है। केन्द्र तक पहुँचने का कोई अन्य उपाय नहीं है। हमारे अन्दर वही केन्द्रीय शक्ति है यद्यपि कि वह हमारे गलत कर्मों से प्रभावहीन हो गयी है। ध्यान में हम उसी शक्ति से कार्य लेते हैं। तो हम इस प्रकार प्रकृति की शक्ति से ही स्वाभाविक रूप से आगे बढ़ते हैं। जब हम ध्यान करते हैं तो हमारे अन्दर निहित केन्द्रीय शक्ति कार्यरत रहती है। यह अपनी शक्ति से घिरे हुए घने बादलों को अधिकांशतः सुखा कर तितर-बितर कर देती है। इसे शब्दों द्वारा व्यक्त नहीं किया जा सकता। केवल एक अभ्यासी ही इसका अनुभव कर सकता है। इसका ज्ञान व्यावहारिक रूप से ही प्राप्त किया जा सकता है। आप शीघ्र ही अपने को शाश्वत शान्ति और प्रसन्नता में तैरते हुए पायेंगे। यहाँ सब कुछ समाप्त हो जाता है। संसार के प्रति कोई लगाव नहीं रह जाता। मन अनुशासित हो जाता है, स्वतः ही नियंत्रित हो जाता है। इन्द्रियाँ वश में होने लगती हैं और उन पर आपका स्वामित्व हो जाता है। अपने पर अधिकार कर लेने का मतलब प्रकृति पर अधिकार कर लेना है। जब मार्ग साफ हो जाता है तो आप प्रकृति का कार्य अपने क्षेत्र और सीमा में पाते हैं, बल्कि आप स्वयं ही करने लगते हैं।

हमारी संस्था में अभ्यासी को हृदय पर ध्यान करने की सलाह दी जाती है। उसे हृदय में ईश्वरीय प्रकाश की विद्यमानता पर ध्यान करने को कहा जाता है। परन्तु उसे निर्देश दे दिया जाता है कि वह प्रकाश को किसी विशेष रूप या आकृति में, जैसे बिजली का बल्ब या मोमबत्ती

आदि में, देखने की चेष्टा न करे। क्योंकि उस हालत में वहाँ दीख पड़ने वाला प्रकाश वास्तविक न होकर स्वयं उसके ही सृजनात्मक कल्पना का विकास मात्र होगा। अभ्यासी को प्रकाश की केवल एक कल्पना मात्र लेकर चलने को कहा जाता है जिसके मूल में दैवत्व का विचार निहित हो। परिणामतः हम सूक्ष्मतम वस्तु पर ध्यान करते हैं जिसकी ही प्राप्ति हमें करनी होती है।

हृदय पर ध्यान करने की पद्धति यह है कि इसमें ईश्वरीय प्रकाश के बारे में सोचा जाय। जब आप इस प्रकार ध्यान करना प्रारम्भ करें तब आप केवल यह सोचें कि उसके अन्दर की ईश्वरीय ज्योति आपको आकर्षित कर रही है। यदि ध्यान के मध्य बाह्य विचार आपका पीछा करते हों तो उनकी परवाह न करें। उन्हें आने दीजिए पर आप अपने कार्य में लगे रहिए। अपने विचारों और भावों को अनाहूत अतिथि की भाँति समझिए। इस पर भी यदि वे आयें तो ऐसा मानिये कि वे मालिक के हैं आपके नहीं। इस प्रकार का अत्यन्त ध्यान प्रभावशाली होता है और इच्छित परिणाम लाने में कभी भी असफल नहीं हो सकता। प्रातःकाल एक निश्चित सुखासन में एक घंटे बिल्कुल स्वाभाविक रूप में बैठे। आपको केवल ध्यान करना चाहिए। आपको अपने विचारों से जो सामान्यतया ध्यान में आते हैं संघर्ष नहीं करना चाहिए। समाधि ध्यान का सहज और स्वाभाविक परिणाम है। जो लोग ध्यान की बजाय समाधि पर बल देते हैं और उसी पर जबंदस्ती अपना मन लगाते हैं आमतौर पर असफल ही होते हैं।

हर सन्त ने 'प्रकाश' शब्द का प्रयोग किया है और मैं भी इसको टाल नहीं सकता क्योंकि 'वास्तविकता' की सुन्दरतम अभिव्यक्ति भी उसी से होती है। लेकिन वह कुछ दुरुहताएँ भी उत्पन्न करता है क़्योंकि, जब हम प्रकाश की बात करते हैं तो प्रदीप्ति का भाव प्रमुख हो जाता है और हम उसे चमकता हुआ मानने लगते हैं। वास्तविक प्रकाश के साथ ऐसा कोई भाव नहीं है। निःसन्देह हमारी प्रणाली में अभ्यासी कभी-कभी प्रकाश देखता है। परन्तु झलकता प्रकाश केवल प्रारम्भ में दीख पड़ता है जब द्रव्य ऊर्जा के सम्पर्क में आता है। दूसरे शब्दों में, यह केवल एक संकेत मात्र है जिससे पता चलता है कि ऊर्जा ने कार्य करना

प्रारम्भ कर दिया है। वास्तविक प्रकाश भोर के रंग का होता है अथवा रंगहीनता का एक हल्का परावर्तन जैसा होता है। यद्यपि प्रकाश उस वस्तु का बिल्कुल सही अनुवाद नहीं है, (क्योंकि प्रकाश में उस वस्तु की अपेक्षा कहीं अधिक गुरुता है), फिर भी उसे केवल समझने के लिए ऐसे व्यक्त किया गया है। यदि अभ्यासी अपने को क्रमशः हल्का महसूस करे तो समझना चाहिए कि वह प्रगति कर रहा है क्योंकि वह उस अवस्था में प्रवेश कर रहा है जिसमें ईश्वर स्थित रहता है। हल्के-पन का मतलब स्वयं अपने ही विचारों के भार की अनुपस्थिति है। अतः वास्तविक प्रकाश का अर्थ वास्तविक तत्व अथवा अधिक ठीक ढंग से कहा जाय तो तत्वहीन तत्व है।

अभ्यासी की अपनी इच्छा और पूर्वाग्रहों सें प्रभावित सभी कृत्रिम और त्रुटिपूर्ण बल प्रयोग हानिकर सिद्ध होते हैं—बहुधा असाध्य हो जाते हैं। इसलिए प्रकाश का देखना, आदि कृत्रिमता से निर्मित नहीं करना चाहिए और न इस पर बल ही देना चाहिए। जब कभी ये पैदा होते हों तो उन्हें देख भर ले उनके साथ कोई व्यक्तिगत राग नहीं होना चाहिए। व्यक्तिगत राग की एक मात्र वस्तु अन्तिम ध्येय—साक्षात्कार—होना चाहिए जिसे सदैव दृष्टि में दृढ़तापूर्वक रखना चाहिए और इसी को किसी भी निरर्थक और अदने बिखराव के विरुद्ध सबसे विश्वसनीय आश्वासन (गारन्टी) होना चाहिए। जैसा कि पहले बताया जा चुका है हानिकर त्रुटिपूर्ण विचार का एक उदाहरण यह है कि राजयोग का अधिकांश अभ्यासी ध्यान के अभ्यास के हर सत्र में बेचैनी से चेतना के केन्द्रीकरण की प्रतीक्षा पर बल देते हैं। यौगिक साधना के इतिहास में इस विचारधारा ने भारत तथा अन्य देशों में गजब ढा दिया है। संन्यासी का कड़ा जीवन, तपस्या और शारीरिक कष्ट देने की पद्धति, आदि, जिनका प्रयोग सामान्यतया मन को नियन्त्रण में रखने के लिए किया जाता है उसको कुप्रवृत्तियों से मुक्त नहीं कर पाते। बल्कि दूसरी तरफ वे बुराई को अन्दर दबा देते हैं जिसका विस्फोट कभी भी संयोगबशात नियन्त्रण ढीला होने पर हो सकता है। समस्या का वास्तविक समाधान मन को दमन-शमन अथवा कष्ट देकर अस्वाभाविक तौर से नियंत्रित करने में नहीं अपितु इसके क्रमिक ढलाई में है जो इसको कुप्रवृत्तियाँ से मुक्ति दिला सके। इसलिए, इस

तथा अन्य सभी मामलों में एक सच्चे विद्यार्थी की प्रवृत्ति अपनाने, हर चीज को समझने और प्राकृतिक रूप से कार्य करने तथा विकसित होने का अवसर प्रदान करने से अतिशीघ्र प्रगति होती है।

सामान्यतया मैं हृदय पर उस बिन्दु पर ध्यान करने का सलाह देता हूँ जहाँ पर आप उसकी धड़कन महसूस करते हैं। दूसरे बिन्दुओं जैसे नासिकाग्र या भ्रू-मध्य, आदि पर भी ध्यान किया जा सकता है परन्तु मेरे विचार से हृदय पर ध्यान सबसे सरल और अत्यधिक लाभप्रद होता है। हृदय पर ध्यान करने में एक बड़ा दर्शन निहित है। हृदय रक्त संसार का (Pumping Station) पम्प केन्द्र है। यह शरीर के हर हिस्से और छोटे से छोटे कोष को शुद्ध रक्त भेजता है। अब हमने हृदय को ध्यान के लिए केन्द्र बना लिया है। जो हमारी शारीरिक प्रणाली में रक्त प्रवहित होता है वह इससे प्रभावित होता है। अपने ही विचारों और कार्यों के कारण बनी ठोसता पिघलने लगती है। यह पहली चीज है जो इस प्रकार हृदय पर ध्यान करने से प्रथम दिन से प्राप्त करने लगते हैं। यही नाभिक है और जहाँ कहीं भी इसे निर्देशित किया जाता है वहाँ कम्पन की गति पैदा करता है। यह मन का कार्य क्षेत्र है और यह वह यन्त्र है जिसके द्वारा हम विवेक संकाय का विकास करते हैं। दैवी ऊर्जा के अवतरण के लिए सूक्ष्म शक्ति यहाँ पर कार्य करती है। यदि किसी प्रकार हमारी विचारधारा इससे संयुक्त हो जाती है या हम इस प्रकार प्रशिक्षित करते हैं कि यह सही चीज को रिसा कर वास्तविकता की ओर मोड़ दे तो समस्या का हल मिल जाता है। लोग पूछ सकते हैं कि ध्यान करना क्यों आवश्यक है। उत्तर बिल्कुल सीधा और आसान है। ध्यान में हम अपने को एक बिन्दु पर एकत्र करते हैं जिससे कि हमारा व्यक्तिगत मन अपनी इधर-उधर भटकने वाली आदत जो इसने डाल रखी है, छोड़ दे। इस अभ्यास से हम अपने व्यष्टि मन को सही मार्ग पर ला देते हैं क्योंकि इसकी आदतों में अब रूप-परिवर्तन होने लगता है। जब यह होने लगता है तो निश्चय ही हमारे विचार इधर-उधर नहीं भटकते हैं। हृदय ही एक-मात्र ऐसा बिन्दु है जिस पर हमें जड़-चेतन की जोड़ने वाली कड़ी की स्पष्ट अनुभूति होती है। यही कारण है कि हृदय पर ध्यान बहुत लाभदायक है। इसके अतिरिक्त हृदय मन का कार्यक्षेत्र है। मन तो

सदैव वैसा ही रहता है जैसा यह है। हृदय को ही मन के कार्यक्षेत्र के रूप में व्यवस्थित करना है। इसलिए, ध्यान के लिए सबसे उपयुक्त बिन्दु वही हो सकती है जहाँ से धारा बहती हो, ऊपर या नीचे की ओर। यह हृदय के अतिरिक्त और कुछ नहीं हो सकता। त्रिकुटी (भू-मध्य) को भी इस प्रयोजन के लिए ले सकते हैं परन्तु वह सामान्य मनुष्यों के लिए आसान नहीं है क्योंकि वह अभ्यास से बहुत अधिक श्रम की अपेक्षा करता है। और यदि अभ्यासी उचित ढंग से ध्यान का अभ्यास नहीं करता है तो बाद में उससे बहुत सी जटिलताओं के पैदा होने की सम्भावना रहती है। नाभि पर ध्यान का कोई आध्यात्मिक महत्व नहीं है सिवाय इसके कि इससे एक गुदगुदी पैदा होती है जो अन्त में मन और आवेगों को और भी अधिक तीव्र कर देती है।

अभ्यासी में एक निश्चित स्तर तक श्रद्धा विकसित हो जाने पर हम लोग सामान्य तौर पर प्रतीयमान रूप से मनुष्य रूप पर ध्यान करने पर बल देते हैं। आलोचक इसे आध्यात्मिक प्रगति के लिए आत्मघाती बता सकते हैं। परन्तु बात ऐसी नहीं है। प्रतिबन्ध यह है कि जिस व्यक्ति का ध्यान किया जाय वह विशेष क्षमता का हो और आध्यात्मिक प्रशिक्षण के लिए द्रव्यहीन परम बिन्दु से आया हो अथवा सर्वोत्कृष्ट स्वप्रयास से इस कार्य के लिए आवश्यक आध्यात्मिक विकास का स्तर प्राप्त कर चुका हो।

४. निर्मलीकरण या सफाई

निर्मलीकरण की विधि विचार की मौलिक शक्ति का उपयोग मानव-इच्छा के रूप में व्यष्टि-आत्मा के परिष्कार के लिए करती है ताकि वह सूक्ष्माति-सूक्ष्म तादात्म्य के सत्व के साक्षात्कार के खड़े और फिसलनदार मार्ग पर आरोहण करने योग्य हो सके।

सायंकाल पुनः उसी मुद्रा में (जिसमें ध्यान किया जाता है) कम से कम आधा घंटा बैठना चाहिए और सोचना चाहिये कि दुरुहताएँ पूर्व विचारों के मलों का जाल, परुषताएँ अथवा शारीरिक ठोसतायें सभी पिघल रहे हैं या पीछे से भाप के रूप में उड़ कर निकल रहे हैं। यह आपको मन शुद्ध करने में सहायता देगा और अपने महान गुरु के लाभकर प्रभाव का ग्राहक बना देगा। ज्योंही मैं देखूँगा कि आप बाहरी

तत्वों से मुक्त हो गये हैं, मैं आवश्यकतानुसार या तो इसे किसी और रूप में परिवर्तित कर दूँगा या आपको रुक जाने के लिए कह दूँगा। इस प्रकार हम चक्रों एवं उनकी उप-ग्रन्थियों को जगाते और साफ करते हुए ऊँची उड़ाने भरते हैं और कुन्डलिनी को सबसे अन्त में लेते हैं जिसके लिए अभ्यासी को स्वयं कुछ नहीं करना होता है। यह पूर्णतया गुरु पर निर्भर करता है। परन्तु यह याद रखना चाहिए कि इन पद्धतियों का अभ्यास करते समय मन पर अत्यधिक जोर नहीं देना चाहिए बल्कि स्वाभाविक रूप से बैठना चाहिए। सफाई का यह अभ्यास प्रात:कालीन ध्यान के अभ्यास के पूर्व भी लगभग पाँच मिनट तक करना चाहिए। अभ्यासी की व्यक्तिगत आवश्यकता के अनुसार सफाई की अन्य भी विधियाँ बताई जा सकती हैं। उनके विस्तृत वर्णन की कोई यहाँ आवश्यकता नहीं है। यह कहना पर्याप्त होगा कि निर्मलीकरण की विधि विचार की मौलिक शक्ति का उपयोग मानव इच्छा के रूप में व्यष्टि आत्मा के परिष्कार के लिए करती है ताकि वह सूक्ष्माति सूक्ष्म तादात्म्य के सत्व के साक्षात्कार के खड़े और फिसलनदार मार्ग पर आरोहण करने योग्य हो सके।

५. प्रार्थना

प्रार्थना सफलता का सबसे महत्वपूर्ण एवं अचूक साधन है।

हे नाथ तू ही मनुष्य जीवन का ध्येय है,
हमारी इच्छाएँ हमारी उन्नति में बाधक हैं।
तू ही हमारा एक मात्र स्वामी और इष्ट है,
बिना तेरी सहायता तेरी प्राप्ति असम्भव हैं॥

अभ्यास के रूप में एक और चीज यह है कि सोते समय अत्यन्त शरणागत भाव में, दैवी प्रेम से लबालब हृदय से, ऊपर दी हुई छोटी सी प्रार्थना की जाय। अपने मन में प्रार्थना को एक या दो बार दुहराना चाहिए और कुछ क्षणों तक इस पर ध्यान करना चाहिए। प्रार्थना इस प्रकार करनी चाहिए जैसे कोई अत्यन्त दीनहीन व्यक्ति अपने कष्टों को अत्यन्त विषाद युक्त हृदय से सद्‌गुरु ईश्वर के सम्मुख अश्रुपूरित नेत्रों से उसकी दया और कृपा की याचना कर रहा हो। तभी वह सुपात्र जिज्ञासु हो सकता है। ईश्वर से प्रेम करने के कई तरीके हैं और

कई भावों को अपनाया जाता है यथा पितृभाव, साख्य भाव, आदि। मेरे विचार से प्रेमी और प्रेमास्पद से सुन्दर कोई सम्बन्ध नहीं हो सकता। यदि कोई अभ्यासी अपने को प्रेमी और ईश्वर को प्रेमास्पद मान ले और उसी भाव से चले तो इसका परिणाम यह होगा कि अंत में ईश्वर स्वयं प्रेमी और अभ्यासी प्रेमास्पद बन जायेगा। परन्तु यदि कोई ऐसा समझ ले कि इस स्तर पर उसने लक्ष्य की प्राप्ति कर ली है तो यह भारी भूल होगी। इसके आगे क्या बचता है, कहा नहीं जा सकता क्योंकि इसका सम्बन्ध केवल अभ्यास से है।

प्रार्थना सफलता का सबसे महत्वपूर्ण और अचूक उपाय है। इसके जरिये हम पावन देवत्व से अपना सम्बन्ध जोड़ लेते हैं। प्रार्थना प्रेम और भक्तिपूर्ण हृदय से इसीलिए की जानी चाहिए कि व्यक्ति अपने में एक प्रकार की शून्यता पैदा करे जिससे ईश्वरीय कृपा के प्रवाह को उसकी ओर मोड़ा जा सके। जब संसार वर्तमान रूप में निकला तो केन्द्रीय बिन्दु सभी अस्तित्वों के भीतर बैठा था। यह हममें बैठा हुआ केन्द्रीय बिन्दु उच्चतम का अंश होने के नाते हमारा ध्यान स्रोत की तरफ ले जाता है। प्रार्थना में हम उसी केन्द्रीय बिन्दु तक पहुँचने का प्रयास करते हैं। यह तभी सम्भव है जब हम अपने अन्तर में उसी प्रकार की अवस्था उत्पन्न करें। इसके लिए अभ्यास की आवश्यकता होती है। यह अपने को ईश्वर की इच्छा-जो अत्यन्त सरल और शांत है—पर छोड़ देने से प्राप्त किया जा सकता है। देखने में यह बहुत कठिन प्रतीत होता है परन्तु उनके लिए जो इसके इच्छुक हैं, ऐसा नहीं है। जब कोई व्यक्ति अपने में 'परम' के लिए तीव्र तड़प पैदा करता है तो वह वास्तव में प्रार्थना की दशा में रहता है। हर व्यक्ति को इसके लिए प्रयास करना चाहिए। जब कभी कोई मनुष्य एक क्षण के लिए भी उस दशा में प्रवेश कर जाता है तो उसकी प्रार्थना स्वीकार कर ली जाती है। परन्तु इस कार्य को करने के लिए सतत अभ्यास की आवश्यकता होती है। लोगों को इस प्रकार की प्रार्थना करने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए। यदि कोई व्यक्ति इसे प्राप्त कर लेता है और इसमें स्थिर हो जाता है तब उसके लिए सिवाय स्मरण के और क्या शेष रह जाता है, और वह भी इस रूप में कि यह कभी उसकी चेतना में भी नहीं आता।

(स) तीव्र प्रगति के लिए कुछ और आवश्यक सूत्र

६. सतत स्मरण

हमें अपने मानसिक एवं मौलिक कार्यकलापों के सभी पहलुओं में ईश्वरीय विचार के सम्पर्क में सदा बना रहना चाहिए।

ईश्वर का सतत स्मरण वास्तव में, आध्यात्मिकता की एक विशेष विधा है। सतत स्मरण पैदा करने का तरीका यह है कि अपने खाली घड़ियों में चाहे कार्यालय में हों या घर में, गलियों में या बाजारों में, दृढ़ विश्वास के साथ यह सोचा जाय कि ईश्वर सब पर और सब जगह विद्यमान है और आप उसके बारे में सोच रहे हैं। जितनी लम्बी अवधि तक हो सके उसी विचार में निमग्न रहने का प्रयास करें।

लोगों का मन हर क्षण अपने भौतिक जीवन की विविध समस्याओं के सोच विचार में लीन रहता है और उनका ध्यान ईश्वर की ओर सिवाय कारुण विपत्ति और कष्ट के अवसरों के कभी नहीं जाता। कारण यह है कि वे अपने भौतिक मूल्यों को ही मूलभूत महत्व देते हैं और कभी भी, किसी भी हालत में उससे बाहर आने की नहीं सोचते। साक्षात्कार में अन्तिम सफलता के लिए बार-बार ईश्वर का स्मरण यद्यपि काफी सहायक है फिर भी सब कुछ नहीं है। हम सामान्यतया कोई महत्वपूर्ण कार्य ईश्वर का नाम लेकर प्रारम्भ करते हैं। यह क्रिया लगभग हर धर्म में प्रथा के रूप में प्रचलित है। परन्तु वह केवल औपचारिकता की बात है। उसका कोई महत्व नहीं है। हम उसे कभी भी सच्चे अर्थ में ईश्वर को समर्पित नहीं करते। सच बात तो यह है कि हम ईश्वर के विचार से कोसों दूर रहते हैं। इस प्रकार के ईश्वर स्मरण से कोई लाभ नहीं है। इस प्रथा का वास्तविक महत्व यह है कि हम अपने मानसिक और भौतिक कार्य-कलापों के सभी पहलुओं में ईश्वरीय विचार के सतत सम्पर्क में बने रहें। हम अपने सभी कार्यों में यह महसूस करें कि हर क्षण हम एक अविच्छिन्न विचार लड़ी द्वारा

सर्वशक्तिमान से जुड़े हुए हैं। यह आसानी से हो सकता है यदि हम यह मानें कि हमारे सारे क्रिया-कर्म दैवी कर्तव्य के अंश हैं जो हमें महान मालिक ने सौंपे हैं और जिनकी सेवा हमें जितना हो सके उत्तमोत्तम ढंग से करनी है। कुछ लोग सोचते हैं कि जब मनुष्य जीवन में सांसारिक सम्बन्धों और दायित्वों के कारण अगणित परेशानियों और झंझटों से घिरा रहता है तो उसके लिए ईश्वर का सतत स्मरण अथवा समयान्तर से भी स्मरण व्यावहारिक नहीं है। परन्तु अभ्यास और अनुभव उन्हें यह सिद्ध कर देगा कि इसकी विधि, परेशानिओं और व्यस्तताओं के होते हुए भी, बहुत आसान है और सभी व्यक्तियों द्वारा इसका अनुसरण किया जा सकता है यदि वे केवल अपना ध्यान सच्चे अर्थ में ईश्वर की तरफ मोड़ना सीख लें।

गुरु के प्रति उच्चतम दैवी शक्ति की भावना यदि वह स्वयं साक्षात्कार की अंतिम दशा में लय हो चुका हो तो आध्यात्मिक प्रयत्नों में बहुत सहायक है। आप उन्हें एक मनुष्योपरि मानव मानकर उनके निर्देश पर आश्रित रहते हैं। यदि आप सब कुछ उनको समर्पित करके अपनी व्यस्त दिनचर्या का पालन करें तो सोच नहीं सकते कि अन्त में आपके लिए यह कितना सुन्दर परिणाम लायेगा। जब कोई कार्य कर रहे हो तो सोचें कि यह आप अपने लिए नहीं कर रहे हैं बल्कि वह सोचें कि गुरु जी स्वयं ही अपने लिए कर रहे हैं। नाश्ता करते समय आप यही सोचें की आपके गुरुदेव ही नाश्ता कर रहें हैं। जब आप कार्यालय जांय तो सोचे कि आपके गुरुदेव ही यह सब कर रहे हैं। कार्यालय से वापस आते समय मान लीजिए रास्ते में आप एक आकर्षक नृत्य् देखते हैं। नर्तकी के लुभावनी मुखाकृति पर आपकी आँखें टिक जाती हैं। तब भी सोचिए कि आप नहीं वरन आपके गुरुदेव नृत्य देख रहे हैं। उसके लिए आपकी उत्सुकता तुरन्त समाप्त हो जायगी क्योंकि आपके गुरुदेव की शक्ति आप में प्रवाहित होने लगेगी जिससे कि आप प्रलोभन से छूट जायेंगे। जब आप कार्यालय से आते है। तो आपके बच्चे आपको कई घंटों बाद देखकर प्रफुल्लित हो उठते हैं। आप भी उनकी प्रसन्नता से प्रसन्न होते हैं और यह स्वाभाविक भी है। आपका ध्यान थोड़ी देर के लिए उनकी ओर मुड़ जाता है और आप पवित्र विचार से अपने को थोड़ा दूर पाते हैं। तब आपको यह सोचना चाहिए कि आपके अन्दर

गुरुदेव ही इसका आनन्द ले रहे हैं। फिर तो आप पुनः उसी पवित्र विचार के सम्पर्क में हो जावेंगे। यदि आप अपने मित्र से बातचीत कर रहे हों तो सोचें कि आपके गुरुदेव न कि आप उनसे बात कर रहे हैं। टहलते समय सोचिये कि स्वयं आपके गुरुदेव चल रहे हैं। यहाँ तक कि ध्यान में यदि आप यह विचार धारण करें कि आप नहीं वरन स्वयं आपके गुरुदेव अपने ही रूप पर ध्यान कर रहे हैं तो इसका बहुत उत्तम परिणाम होगा। इसी प्रकार आप अपनी दिनचर्या के सभी कार्यों में तालमेल कर सकते हैं। यदि आप यह विचार पैदा कर लें और यह दृष्टि बनाये रखें कि आपके स्थान पर आपके गुरुदेव ही सब कुछ कर रहे हैं तो आप न केवल सर्वदा सतत स्मरण में रहेंगे बल्कि आपके कार्यों की कोई छाप न बनेगी और इस प्रकार आपके आगे के संस्कारों का बनना बन्द हो जायेगा।

७. भक्ति

ध्यान अथवा सतत स्मरण के लक्ष्य के प्रति अभ्यासी की भक्ति भावना उसके सतत स्मरण को और भी दक्षता प्रदान करती है।

सतत स्मरण वास्तव में ध्यान के अभ्यास का एक सहज विकास है। ध्यान अथवा सतत स्मरण के लक्ष्य के प्रति अभ्यासी की भक्ति भावना उसके सतत स्मरण को और भी दक्षता प्रदान करती है। तब यह एक शुष्क अभ्यास नहीं रह जाता। यह तब एक सर्व व्यस्तीय मधुर कार्य हो जाता है। प्रेम और भक्ति की ज्वाला छोटे-मोटे कचरों को जला डालती है और मैल से स्वर्ण निकल आता है। प्रेमाग्नि की तीन दशाएँ हो सकती हैं। पहली तो वह है जिसमें दबा हुआ अन्तर्दाह (सुलगनी) घना धुँआ दे रहा हो। दूसरी स्थिति में यदा-कदा चिनगारी निकलती है और अन्तिम दशा में चमकीली जलती हुई शिखा निकलती है जो हर वस्तु को क्षणमात्र में भस्म कर देने में सक्षम है। प्रथम दो अवस्थाएँ इस बात पर निर्भर है कि वे वायु में विद्यमान ज्वलनशील पदार्थों के कितने सम्पर्क में है। जब जलने में बाधा उत्पन्न करने वाली ठोसता आन्तरिक गर्माहट से दूर हो जाती है तो अन्तिम कार्य पूरे बेग से प्रारम्भ हो जाता है। परन्तु, अग्नि विद्युत की भी तो होती है जिसमें धुआँ या भाप इत्यादि नहीं होते। वह तो प्रथम दो अवस्थाओं

को छोड़ अन्तिम अवस्था में ही प्रकट होती है। यदि आप अपने में इस प्रकार की अग्नि जला सकें तो आपकी प्रगति दिन दूनी रात चौगुनी होगी।

भक्ति और प्रेम की उपलब्धि वास्तव में एक साथ ही अत्यन्त सरल और अत्यन्त कठिन दोनों है। वास्तविक भक्ति में अहंकार का जरा भी पुट नहीं होता। वह तो अन्तर्प्रकाशन के साथ-साथ बढ़ती जाती है। प्रारम्भिक अवस्था में भक्त प्रेमास्पद के प्रति अपनी भावना के बारे में पूर्णतः सचेत हो सकता है, परन्तु उच्चतर अवस्थाओं में इसकी तीव्रता मन्द पड़ जाती है यहाँ तक कि अन्तिम अवस्था में इसका भान भी लगभग समाप्त हो जाता है। भक्ति की सुन्दरतम अवस्था को पूर्ण आत्म-समर्पण कहा जा सकता है जिसमें से स्वयं सर्वोच्च स्वामी (सद्गुरु) द्वारा समर्पण की भावना का भान भी बिल्कुल खींच लिया गया हो।

भक्ति, समर्पण आदि के सहज ढंग के अभ्यास की समस्या बनी रहती है। इस सम्बन्ध में यह कहा जाता है कि कोई व्यक्ति अपनी ही जाति के दूसरे व्यक्ति से सर्वाधिक प्रेम कर सकता है। इसलिए गुरु को ईश्वर का मानवीकरण के रूप में लिया जाता है। मेरे सम्बन्ध में मेरे गुरुदेव ही मेरे एकमात्र प्रेमास्पद रहे। मैं मुक्ति, शान्ति, पूर्णता या अन्य किसी वस्तु का प्रेमी नहीं था अपितु उनका और केवल उन्हीं का प्रेमी था। निःसन्देह मेरे गुरुदेव उसके योग्य थे। वे ध्यान के लिए सुयोग्यतम व्यक्ति थे और उनकी भक्ति की जा सकती थी। वे अहं-भावों, इच्छाओं और सांसारिक उलझानों से बिल्कुल मुक्त थे तथा पूर्णतः 'आत्म-रमण' करते थे। यह शब्द आध्यात्मिकता की एक बड़ी ऊँची अवस्था का सूचक है जो आमतौर पर मनुष्यों को नहीं प्रदान की जाती। यही कारण था कि मैंने अपने भरसक उत्तमोतम ढंग से उनसे प्रेम किया। मैंने मनसा-वाचा, कर्मणा में उनमें पूर्णरूप से लय हो जाने का प्रयास किया। यही मेरे लिये जीवन कार्य रहा है। ऐसा इसलिए था कि मुझे एक गुरु ऐसा मिल गया था जो अपूर्व एवं अद्वितीय था। उनसे प्राप्त उपलब्धियों को व्यक्त करने के लिए मेरे पास शब्द नहीं। सारांशतः वे तो कृपा के अनन्त समुद्र हैं जिसमें हम सभी को

बिलीन हो जाना है। ईश्वर करे यह सभी सच्चे जिज्ञासुओं को सुलभ होवे।

८. समर्पण

अभ्यासी के लिए अपने (अध्यात्म) कार्य में आत्मा समर्पण का बड़ा महत्व है।

ध्येय की प्राप्ति का सबसे आसान और अचूक उपाय अपने आप को महान गुरुदेव को समर्पित कर देना और 'जीवित-शव' की दशा को प्राप्त कर लेना है। समर्पण की यह भावना यदि हठात या बाह्य उपायों से उत्पन्न की जाय तो कभी भी सच्ची नहीं सिद्ध होती। इसका विकास आप में स्वतः ही होना चाहिए और इससे मन पर लेशमात्र भी दबाव या खिंचाव नहीं पड़ना चाहिए। यदि 'स्व' की जानकारी बनी रहे तो यह वास्तविक समर्पण नहीं है। यह वास्तविक अर्थ में समर्पण नहीं है। जब आपने वास्तविक अर्थ में अपने आपको समर्पित कर दिया है तब करने को क्या शेष रह जाता है? कुछ भी नहीं। मेरा विश्वास है कि इस अवस्था में अभ्यासी सदैव वास्तविकता के निकट सम्पर्क में रहेगा और दिव्य प्रभा की धारा उसमें अबाध रूप से बहती रहेगी। इस प्रकार आप अपने जीवन की समस्या सरलतम और अत्यन्त इष्टफलोत्पादक ढंग से अल्पतम समय में हल कर सकते हैं। अतः यदि कोई अपने दैवी गुरु को अपना हृदय-दान कर सकता है तो फिर उसके बाद कुछ भी करना शेष नहीं रह जाता। यह सहज ही उसे 'परम तत्व' में लय हो जाने की स्थिति में ला देगा। इस सरल और आसान तरीके का उपयोग प्रारम्भ से ही इसका अन्त बना देता है। जीवन की सबसे प्रिय वस्तु की प्राप्ति के लिए एक नन्हें हृदय के अतिरिक्त और कौन सा सर्वथा उपयुक्त उपहार हो सकती है।

एक बात और। सरलतम ढंग से हृदय का समर्पण करने के लिए केवल इच्छा की एक क्रिया मात्र की आवश्यकता है। इच्छा जितनी ही सूक्ष्म और हल्की होगी इसका कार्य उतना ही अधिक प्रभावशाली होगा। इस विधि का अनुसरण निश्चित ही प्रथम दिन से ही त्याग की भावना

उत्पन्न करेगा। इसके लिये केवल एक साहसिक प्रारम्भ देने की आवश्यकता है।

आत्म-समर्पण स्वात्मा की बिल्कुल चिन्ता किये बिना अपने को पूर्णतः गुरु की इच्छा पर छोड़ देने की स्थिति के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। इस स्थिति में स्थाई निवास निषेध की प्रारंभिक स्थिति की ओर ले जाता है। जब हम अपने को महान गुरु को समर्पित कर देते हैं तो उनसे उच्चतम कोटि की एक निरन्तर प्रवाहित दैवी धारा अपनी ओर हमें खींचना प्रारंभ कर देती है। इस अवस्था में व्यक्ति वही सोचता और करता है जो उसके गुरु की इच्छा कहती है। संसार में वह किसी वस्तु को अपना नहीं समझता। हर वस्तु वह गुरु का पवित्र धरोहर मानता है। हर कार्य वह गुरु का आदेश मानकर करता है। उसकी इच्छा पूर्णत: गुरु की इच्छा के अधीन होती है। समर्पण कोई साधारण चीज नहीं है जो आसानी से प्राप्त हो जाय। इसका प्रारम्भ सभी इन्द्रियों और संकायों के निषेध के बाद होता है जिसके लिए हम भक्ति के प्रारम्भिक नियमों के अनुसार चलते हैं। हम अपने गुरु को एक मनुष्योपरि मानव मानकर सब कुछ उनको समर्पित कर देते हैं। हम उनसे श्रद्धा, भक्ति और आदर से प्रेम करते हैं और उनका ध्यान एवं कृपा अपनी ओर आकर्षित करने का हर संभव प्रयास करते हैं।

महात्माओं ने शिष्यों का वर्गीकरण मुख्यतया दो वर्गों में किया है– मनमत और गुरुमत। पहले वर्ग में वे हैं जो गुरु के पास किसी विशेष सांसारिक उद्देश्य को लेकर जाते हैं–जैसे कष्ट से मुक्ति, धन की इच्छा आदि। वे उसी समय तक उनके प्रति आज्ञाकारी रहते हैं जब तक उन्हें अपनी इच्छाओं की पूर्ति की आशा रहती है। जब इस दिशा में उन्हें निराशा होती है तो वे रफ़ू चक्कर हो जाते हैं। ऐसे शिष्यों के लिए आज्ञाकारिता अथवा अधीनता का प्रश्न ही नहीं उठता, समर्पण की कौन कहे! गुरुमत शिष्य वे हैं जो हर विषयों में गुरु के आदेश का पालन करते हैं और हर संभव उपायों द्वारा उनकी इच्छा के अनुकूल चलने का प्रयत्न करते हैं। आज्ञाकारिता से अधीनता का भी श्रीगणेश होता है। जब हम आध्यात्मिकता में ऊँची उपलब्धियों वाले गुरु की

उच्च शक्तियों से बहुत अधिक प्रभावित हो जाते हैं तो उनके आदेशों का पालन करने के लिए हम अन्दर से उत्सुक रहते हैं।

समर्पण का एक सुन्दर उदाहरण हमारे सम्मुख दशरथ पुत्र भरत द्वारा जब वे अयोध्यावासियों के साथ राम को जंगल से वापस लाने के संबंध में मनाने गये थे, प्रस्तुत किया गया है। लोगों की विनती और प्रार्थनाओं के उत्तर में राम ने गम्भीरतापूर्वक उत्तर दिया कि वे राजधानी वापस चलने को तैयार हो जावेंगे यदि भरत ऐसा करने के लिए उनसे कहें। सबके नेत्र भरत की ओर घूम गये जो स्वयं वहाँ उन्हें वापसी के लिए मनाने के लिए विद्यमान थे। परन्तु उन्होंने शान्तिपूर्वक उत्तर दिया, "मुझे आदेश नहीं देना है बल्कि केवल अनुसरण करना है।" अतः अभ्यासी के लिए उसके अपने (अध्यात्म) कार्य में आत्मसमर्पण का बड़ा महत्व है ।

□□

अभ्यासियों के लिए ध्यान की विधि

प्रातः—दिल में ईश्वरीय प्रकाश विद्यमान होना मानकर ध्यान धारण करें। मन को जबरदस्ती खींच कर लगाने की कोशिश न करें। एकाग्रता के लिए प्रयत्नशील न हों और न प्रकाश को देखने का प्रयास करें। बिल्कुल सहज या साधारण रीति से ध्यान में लगे रहें। प्रकाश चाहे दिखाई पड़े या न पड़े, उसकी चिन्ता न करें। यह अभ्यास आरम्भ में कम से कम आधा घण्टा करें और धीरे-धीरे बढ़ा कर एक घण्टा ले आवें।

सायं—शाम को आधा घण्टा ध्यान में बैठें और यह ख्याल करें कि समस्त द्वेष, विकार, आन्तरिक कालिमा और मल आदि शरीर से पीछे की ओर धुएँ के रूप में निकले जा रहे हैं और निकल गये हैं। अपने विचार द्वारा उनको निकाल फेंकते भी रहें।

प्रार्थना—रात्रि में सोने से पूर्व निम्नलिखित प्रार्थना अत्यन्त विनीत भाव से इस प्रकार करें कि दो-तीन बार शब्दों को मन में कहें और उसके सत्य-भाव पर चिन्तन आरम्भ करे, यहाँ तक कि उसी में खो जायें और यह सत्य-भाव भी भूला हुआ सा प्रतीत हो। केवल ध्यानमग्न अवस्था सी छाई रहे।

हे नाथ ! तू ही मनुष्य जीवन का ध्येय है।
हमारी इच्छायें हमारी उन्नति में बाधक हैं।
तू ही हमारा एक मात्र स्वामी और इष्ट है।
बिना तेरी सहायता तेरी प्राप्ति असम्भव है।

सहजमार्ग के दस नियम

१. प्रत्येक भाई प्रातः सूर्योदय से पूर्व उठे, संध्योपासना नियमित समय पर जहाँ तक हो सके समाप्त कर ले। पूजा के लिए एक पृथक् स्थान और आसन नियत कर ले। यथाशक्ति एक ही आसन से बैठने की आदत डाले, और शारीरिक व मानसिक पवित्रता का अधिक ध्यान रक्खे।

२. पूजा प्रार्थना से आरम्भ की जावे। प्रार्थना आत्मिक उन्नति के लिए होनी चाहिए और इस तरह कि हृदय प्रेम से भर जाये।

३. प्रत्येक भाई को चाहिये कि अपना ध्येय अवश्य निश्चित कर ले, और वह यह कि ईश्वर तक पहुँच कर उसमें अपनी लय अवस्था प्राप्त करके पूर्ण स्थित प्राप्त करनी है। जब तक यह बात प्राप्त न हो जाये चैन न आये।

४. अपना जीवन साधारण बना ले और वह ऐसा साधारण हो कि आदि प्रकृति (nature) से मिल जुल जाये।

५. सच बोले और प्रत्येक कष्ट को ईश्वर की तरफ से अपनी भलाई के लिए समझे और उसका धन्यवाद दें।

६. सारे जगत को अपना भाई समझे और सबके साथ ऐसा ही व्यवहार करे।

७. यदि किसी से कोई कष्ट पहुँचे, तो उसका बदला लेने का इच्छुक न हो वरन् ईश्वर की तरफ से समझे और धन्यवाद दे।

८. भोजन करने के समय जो कुछ मिल जाये प्रसन्नता से पाये, और ईश्वर की याद में भोजन करें। शुद्ध और पवित्र कमाई का ध्यान रहे।

९. अपना रहन-सहन और व्यवहार इतना सुन्दर बना ले कि जिसको देखने मात्र से ही लोगों को पवित्र आत्मा होने का भास हो और लोग उससे प्रेम करने लगें।

१०. यदि कोई अपराध भूल से हो जाये तो सोते समय ईश्वर को अपने सम्मुख समझकर उससे दीनता की अवस्था में क्षमा माँगे और पश्चाताप करे, और प्रार्थना व प्रयत्न भी करे कि भविष्य में कोई अपराध न होने पाये।

ओ३म तत्सत्

सत्य पद

सहज मार्ग

IN MEMORY OF SAMARTH GURU SHRI RAM CHANDRA JI MAHARAJ OF FATEHGARH U.P.

SHRI RAM CHANDRA MISSION SHAHJAHANPUR

U.P.